बलिदान

सार्वदेशिक आर्य-प्रतिनिधि सभा
देहली

बलिदान

तेरह तपस्वियों की सच्ची कहानियाँ

प्रथम भाग

लेखक—

श्री 'नर वरी'

प्रकाशक—

सार्वदेशिक सभा, बलिदान भवन, दिल्ली।

प्रथम संस्करण
२००० प्रतियें

१९४०

मूल्य ॥)

प्रकाशक—

सार्वदेशिक सभा,
बलिदान भवन,
दिल्ली ।

मुद्रक—

चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस,
नया बाजार,
दिल्ली ।

बलिदान

प्रथम भाग

भूमिका

हैदराबाद के धर्म युद्ध की समाप्ति के पश्चात् से ही हमारा विचार था और जनता की मांग थी कि इस युद्ध तथा युद्ध के पूर्व के आन्दोलन के हुतात्माओं की सच्ची कहानियां प्रकाशित की जायँ, जिससे उनकी स्मृति स्थिर रहे और उनके बलिदान से स्फूर्ति और प्रेरणा मिलती रहे।

प्रस्तुत कहानियों के लेखक श्री 'नर वरी' हिन्दी के एक उदीयमान कहानी लेखक हैं। आपकी कहानियों में भाव, भाषा और भावुकता का सुन्दर सम्मिश्रण होता है। पाठकों में उनकी कहानी-शैली बहुत पसन्द की गई है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं के उद्योग का फल है।

हमारे निर्णय पर समय बहुत कम था। फिर भी पुस्तक को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने का पूरा पूरा यत्न किया गया है। जो चित्र हमें उपलब्ध थे वे ही हम दे सके हैं भविष्य में जो चित्र मिलेंगे उन्हें आगामी संस्करण में देने की व्यवस्था की जायगी।

हमें आशा है कि जनता वीर-तपस्वियों की इस पुण्य स्मृति का श्रद्धा, प्रेम और आदर के साथ स्वागत करेगी।

कहने की आवश्यकता नहीं है प्रस्तुत पुस्तक के विचारों के लिये लेखक ही उत्तरदाता है।

मंत्री—

बलिदान भवन
१०-८-१९४०

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
देहली

दो शब्द

कहानी और धर्मोपदेश में मुख्य भेद इतना ही है कि धर्मोपदेश में, जहाँ संसार के किसी भी उपादेय सत्य को—स्पष्ट, कोमलता शून्य और भर्त्सना-मिश्रित भाषा में प्रकाशित किया जाता है, वहाँ कहानी—उसी सत्य को कान्तासम्मित कोमल शब्दों में, कोमल भावनाओं को झंकृत करते हुए, स्पष्ट करती है। इससे मनोरंजन तो होता ही है उच्च मार्ग की तरफ प्रवृत्त कराने वाला कोमल उपदेश भी मिलता है।

कल्पना के आधार पर जीवन की अनुभूतियों और भावनाओं को बताने वाली कल्पना प्रसूत कहानियों की इस समय कमी नहीं है, परन्तु सच्ची घटनाओं को व्यक्ति गत अनुभव के आधार पर प्रकाशित करने वाली कहानियों को लिखने की प्रवृत्ति बहुत कम देखी जाती है। सार्वदेशिकसभा के अनुरोध पर मैंने इन कहानियों को लिख देना स्वीकार किया था। यद्यपि कहानियों का सम्बन्ध उन कतिपय ऐसी दिवंगत आत्माओं से है, जो आर्य सामाजिक क्षेत्र के धर्म प्रधान व्यक्ति थे और जिन्होंने अत्याचार और अन्याय का वीरता पूर्वक सामना करते हुए वैदिक-धर्म और भारत की प्राचीन-संस्कृति की रक्षा के लिये अपने प्राणों की आहुति दी थी—परन्तु ऐसे नाजुक और विवादास्पद विषय पर लेखनी उठाकर भी, कहानियों को सम्प्रदायवाद की दलदल से बचाते हुए उसके कथानक को सत्य साम्राज्य के विशुद्ध क्षेत्र से बाहर न निकलने देने का यत्न किया गया है।

इस 'बलिदान' में स्नेह, क्षमा, और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य की भावनाओं पर विशेष बल दिया गया है। युवकों के लिये वीरत्व और साहस की भावना जाग्रत करने वाली सामग्री भी इसमें यथेष्ठ है। पुरातन वैदिक संस्कृति के आदर्शों की रक्षा करने वाली आत्माओं के लिये भक्ति श्रद्धाञ्जलि भी है। आशा है इस निर्मल नीर का पान करने में किसी को संकोच न होगा और जनता उदार हृदय से इसका स्वागत करेगी।

—हरि तृतीया
श्रावण शुक्ला तृतीया
१९९७ वैक्रमाब्द

विनीत—

—'नर वरी'

निर्देश

राम जी

हैदराबाद के तावसी ग्राम में, अस्पृश्य कहे जाने वाले कुल में, राम जी का जन्म हुआ था। वह जन्म से ही वीर और धर्म-प्राण व्यक्ति था। एक दिन पठानों ने ग्राम में घोषणा की कि वे मन्दिर को नष्ट करते हैं, जिसका दम हो बचाले। मन्दिर के उपासक तथा पुजारी भयभीत होकर अपने मकानों में बैठ गये। परन्तु युवक राम जी का रक्त खौल उठा, वह कूद कर मैदान में निकल आया। शत्रु बहुत थे, वह अकेला। तब भी उसने सन्मुख युद्ध में शत्रुओं को परास्त किया और उनके हाथों मर कर वीर गति प्राप्त की। मन्दिर बच गया।

मन्दिर

—"मैंने आज जो सन्देश तुम्हें दिया है वह मनुष्य के चिरकल्याण की एक प्राचीन साधना है।"

बहुत पुरानी बात नहीं है। भाग्यनगर राज्य के तावसी ग्राम में एक अति प्राचीन मन्दिर था। घने वृक्षों के झुरमुट में से उसका स्वर्णकलश दूर से दिखाई पड़ता था। सैकड़ों उपासक उसमें नित्य एकत्रित होते। एक मेला सा लगा रहता।

पं० चन्द्रशेखर शर्मा उसके मुख्य पुजारी थे।

एक दिन प्रातःकाल जब वे देवता के सामने बैठे हुए उपासकों को चरणामृत वितीर्ण कर रहे थे, मन्दिर के कोने में एक काला सांप दिखाई पड़ा।

पण्डित जी अपनी आचमनी फेंक तुरन्त बाहर भागे। इस घबराहट में वे कितनी ही बार अपनी खड़ावों से टकराकर गिरते-गिरते बचे।

मन्दिर के सामने ही एक विशाल ऊँचा चबूतरा था। वे उसी पर जा चढ़े और 'सर्प-सर्प' कहकर चिल्लाने लगे। यह देख उपासकों में भी भगदड़ मच गई।

उसी समय, सामने की सड़क पर एक युवक चला जा रहा था। उसने दूर से ही पण्डित जी की विपत्ति को भांप लिया। सांप फुफकार कर पण्डित जी पर झपटना ही चाहता था कि अगले ही क्षण वह चबूतरे पर था। विद्युत् वेग से अपना पांव सांप के सिर पर रख उसने उसे पकड़ लिया। पण्डित जी स्वस्थ हुए। उन्होंने मन ही मन देवता को धन्यवाद दिया।

उपासक मण्डली भी, जो सांप के आक्रमण से डरकर दूर जा खड़ी हुई थी, शनैः-शनैः पास आने लगी।

"वाह पण्डित जी, आज तो आप बेतरह घबरा उठे"—एक उपासक ने हंसने की चेष्टा करते हुए कहा।

"और तुम?" खिसियाने से होकर पण्डित जी बोले।

"मैं तो उधर लाठी खोजने गया था न"—सुनकर उपासकों में हास्य का फव्वारा छूट पड़ा।

मगर पण्डित जी युवक की तरफ झुके। वे हास्य का लक्ष्य बिन्दु बनने से बच रहे थे।

अभी वे युवक से कुछ कहने ही वाले थे कि एक उपासक ने उन्हें आंख मारी और पास आकर कान में कुछ कहा भी। सुनते ही पण्डित जी चौंक कर पीछे हट गये; मुख पर कुछ क्रोध भी झलक आया। युवक से बोले—

"अरे भई, ब्राह्मण की प्राण-रक्षा कर तुमने पुण्य तो अवश्य प्राप्त किया था, परन्तु देवता के अपमान से वह नष्ट हो गया।"

युवक मुग्ध भाव से उपासकों के विनोद का आनन्द ले रहा था। पण्डित जी की बात सुन किञ्चित् चौंक उठा। बोलाः—

"कैसा अपमान?"

पण्डित जी जरा कच्चे पड़ गये। युवक के प्रश्न का कोई संक्षिप्त उत्तर उन्हें तत्काल न सूझा।

तुरन्त एक उपासक ने उनकी सहायता की। सांप की पहुँच से सुरक्षित दूरी पर खड़े रहकर वह बोला—

"अस्पृश्य होकर तुमने मन्दिर के चबूतरे पर चढ़ने का साहस किया, यह क्या देवता का अपमान नहीं है?"

पण्डित जी भी ऐसे ही उत्तर की खोज में थे। प्रसन्न होकर बोले—

"ठीक। ठीक। बहुत ठीक।"

परन्तु युवक कुछ न बोला। उसने बोलने की चेष्टा भी न की। सांप को पकड़े हुए वह वहां से चुपचाप चला गया।

उसके जाने के बाद पण्डित जी की आज्ञा से चबूतरे को स्वच्छ जल से धुलवाया गया और उसे एक बार फिर पवित्र बना दिया गया।

तमाशा समाप्त होते देख भीड़ छंटने लगी। उपासकों ने अपने-अपने घर की राह ली और शनैः-शनैः मन्दिर में निस्तब्धता छा गई।

पण्डित जी अपनी पूजा की चौकी पर आ बैठे।

जैसे गरमी उतर जाने के बाद चोट की पीड़ा तीव्र हो उठती है, मन्दिर की उस शून्य उदासी में उपासक का व्यंग्यबाण उन्हें रह रह कर चुभने लगा। उन्हें बार बार उसपर क्रोध आने लगा, उसने क्यों, व्यर्थ ही, उनकी दुर्बलता को हास्य का लक्ष्य बनाने की चेष्टा की ? उन्हें सांप पर भी क्रोध आया। न वह मन्दिर में प्रकट होता, न यह घटना घटती। यहां तक कि युवक भी उनके क्रोध से न बच सका। उसकी उदार, गम्भीर निर्भयता के सामने उनकी दीन, भयभीत आकृति कितनी तुच्छ जान पड़ती थी ?

पण्डित जी की गांव भर में प्रतिष्ठा थी। जीवन-मरण की सन्धि-वेलाओं में, भूत प्रेत की बाधाओं में, तीव्र व्याधियों की निराशाओं 'और भयजनक अवस्थाओं में उनकी उपस्थिति अत्यन्त उत्साहप्रद समझी जाती थी। गांव की स्त्रियां तो उन्हें दूसरा भगवान ही मानती थीं। अपना रेशमी शाल ओढ़े,

चन्दन की खड़ाऊँ पहने, वे जब कभी गांव में आ निकलते एक आतङ्क सा छा जाता। गांव के बच्चे, बूढ़े, सभी उनके लिये मार्ग छोड़ देते।

आज उनकी उसी चिरकालीन प्रतिष्टा में धक्का लगा था।

× × ×

गांव के बाहर अनुराधा नदी के तट पर युवक की कुटिया थी। एक बूढ़ी माता को छोड़ संसार में उसके और कोई न था। पुष्कल दूध देने वाली दो गायों और कुछ भूमि के अतिरिक्त उसके पास और कोई सम्पत्ति भी न थी।

बड़े चाव से उसने अपनी कुटिया को तय्यार किया था। उसके चारों ओर फलदार वृत्त और सुन्दर लतायें आरोपित कर उसे सुशोभित करने में उसने बहुत प्रयत्न किया था। पत्तियों के सङ्गीत और सरिता के कलनाद के कारण वह कुटी और भी रमणीक हो उठी थी।

गांव के कुछ किसानों को छोड़कर, जो उसके 'आश्रम' में आकर प्रतिदिन उसके 'सत्सङ्ग' से लाभ उठाते, बहुत कम ग्राम-वासी उससे परिचित थे। उसका असली नाम रामजी था। परन्तु सब लोग उसे 'युवक' कहकर ही पुकारते थे।

सांप वाली घटना को हुये एक मास से ऊपर हो चुका था। एक दिन पास के गांव से वह अकेला लौट रहा था। मार्ग में

घना बन पड़ता था। सायंकाल का समय था, उसने देखा, सड़क के किनारे एक युवती बैठी रो रही है।

उसकी आयु १८ साल से अधिक न होगी। गेहुआं रंग, मदभरी आंखें, सुन्दर मुख, यौवन और स्वास्थ्य से भरा शरीर, कमर और छाती पर लिपटे हुये वल्कलवस्त्रों के अतिरिक्त उसके शरीर पर अन्य कोई आवरण न था।

दो ही छलांग में युवक उसके पास था।

तुम्हें क्या दुःख है, सुन्दरी? क्या मैं तुम्हारी कुछ सहायता कर सकता हूँ?"—मृदु स्वर में उसने पूछा।

युवती उठकर खड़ी हो गई। उसकी आंखों में आशा चमक उठी।

"यदि आपसे हो सके, मेरे पिता को बचाओ, युवक!" उसने आर्तवाणी से कहा।

"कहां हैं आपके पिता?"

"एक शेर अभी हाल में उन्हें घायलकर उधर घसीट ले गया है। वे अब भी बच सकते हैं। उन्हें जल्दी बचाओ। मैं जन्म भर आपकी इस कृपा को न भूलूंगी, युवक।"

एक ही छलांग में युवक जंगल में घुस गया; युवती उसके पीछे पीछे।

झाड़ियों पर से कूदता, पेड़ों की डालियां ढकेलता, वह तेजी से बन में दौड़ने लगा। उसके कान कराहने या गुर्राने का शब्द

सुनने में लगे थे। परन्तु वहां घुग्घुओं के सायंकालीन शब्द के अतिरिक्त और कुछ भी न सुन पड़ता था।

अन्त में बहुत दौड़-धूप करने के पश्चात् जब वह थक गया, उसमें एक पग आगे बढ़ने की भी शक्ति नहीं रही, निराश होकर उसने युवती की ओर देखा।

एक गुफा की ओर संकेत करती हुई वह तत्काल बोली:—

"वह देखो वहां—जहां—ताजा रक्त पड़ा है; अवश्य इसी में वह मेरे पिता को ले घुसा है।" कहकर वह फिर रो उठी।

युवक कूदकर गुफा के पास पहुंचा और ज्यों ही झुक कर उसके अँधेरे में झांकने लगा, युवती ने फुर्ती से आगे बढ़ उसकी कमर में से उसकी तलवार निकाल ली।

वह घूम कर खड़ा हो गया। देखा एक दीर्घकाय व्यक्ति उसकी गर्दन पर तलवार चला रहा है और युवती कुछ दूर उसकी तलवार लिये खड़ी है।

मामला समझने में उसे देर न लगी। फुर्ती से पैंतरा काट वह वार बचा गया। मगर दूसरे वार से वह साफ साफ न बच सका। उसका कन्धा घायल हो गया।

बिजली की तरह एक विचार उसके मन में दौड़ गया। तलवार के वार से तो वह देर तक नहीं बच सकेगा मगर घातक को गिरफ्तार कर सकता है।

उसी समय तलवार का तीसरा प्रहार हुआ। परन्तु इस बार झपट कर उसने घातक की कमर पकड़ ली और उसे उठा कर पूरे बल से धरती पर पटक दिया।

अब घातक उसके नीचे और वह उसकी छाती पर सवार था। उसकी तलवार भी उसके हाथ में थी।

"भगवान के नाम पर! मेरे पिता को न मारना, युवक! मै एक दम अनाथ हो जाऊँगी"—युवती ने आगे बढ़कर कम्पित स्वर में कहा।

"तुम सरीखी युवती से मुझे ऐसे कपट की आशा न थी। इतने सुन्दर स्वर्ण कलश में इतना तीव्र विष भरा होगा—यह मैं सर्वथा न जानता था। इसीलिये तुम्हारे धोखे में आ गया। परन्तु अब दूर खड़ी रहो। मेरा निश्चय अटल है।"

युवती की आखें सजल हो आई।

"यह अधम श्रेणी की नीचता है"—युवक ने कहना जारी रक्खा—"कि इस तरह दया के नाम पर यात्रियों को फँसाया जाय और फिर उन्हें धोखा देकर निर्दयता से मार दिया जाय। भविष्य में यदि किसी को सचमुच सहायता की आवश्यकता होगी तो तुम्हारे इस पाप के कारण वह उससे वंचित रह जायगा।"

युवती ने युवक की बात का कोई उत्तर न दिया। वह कातर नेत्रों से अपने पिता की ओर देख रही थी।

"इसमें इसका कोई दोष नहीं है। जन्म भर में आज पहली ही वार इसने ऐसा कर्म किया है, और वह भी मेरे आग्रह से।" —डाकू ने नीचे से ही उत्तर दिया।

"तब यह एक और भारी पाप तुमने किया। अपनी सन्तान को जान बूझ कर पाप मार्ग पर चलाने से बढ़ कर दूसरा पाप संसार में और नहीं हो सकता—परन्तु तुमने यह सब किया क्यों?"

'धन के लिये। और क्यों!' घातक ने लापरवाही से उत्तर दिया। युवक ने हँस दिया।

"तुम्हें शायद पता नहीं, संसार में मैं एक अत्यन्त निर्धन व्यक्ति हूँ'—उसने कहा।

"ठीक है। तुम निर्धन हो सकते हो। पर तो भी तुम्हारा सिर निर्धन नहीं है। एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा से कम उसका मूल्य नहीं है।"—डाकू बोला।

'एक सहस्र स्वर्ण मुद्रा!' युवक ने अचंभे से पूछा।

'हां!'—उसी लापरवाही से घातक ने कहा, "पं० चन्द्रशेखर का वायदा कभी झूठा नहीं होता। यदि आज तुम्हारा कटा हुआ सिर मैं उनके पास पहुंचा सकता तो पूरी एक सहस्र स्वर्ण मुद्रायें मेरे हाथ लगतीं।'

युवक क्षण भर के लिये चिन्तामग्न हो गया। फिर शीघ्र ही बोला—

'पं० चन्द्रशेखर ? वे ही न जो मन्दिर के पुजारी हैं ?'

'हां ! वे ही।'

'परन्तु मुझे तो याद नहीं आता, मैंने कभी उनका कोई अनिष्ट किया हो ?"

"अब यह सब मैं क्या जानूँ"

"ठीक है। छोड़ो इस बात को। हां। तुम अपनी कहो, तुम्हारे साथ अब क्या वर्ताव किया जावे ?'

"मैं तो अब तुम्हारे हाथ में हूँ। चाहे जैसा करो !"—घातक ने अविचलित भाव से उत्तर दिया।

"पाप तो तुम्हारा अक्षम्य है। परन्तु तो भी एक शर्त पर मैं तुम्हें मुक्त कर सकता हूँ"—कहकर युवक ने एक बार युवती की ओर देखा।

घातक का चेहरा चमक उठा। बोला—"वह क्या ?"

"यदि अपनी कन्या की शपथ खाकर तुम यह प्रतिज्ञा करो कि आगे से तुम इस पापवृत्ति को फिर कभी न करोगे।"

घातक थोड़ी देर के लिये रुका। मानों कुछ सोच रहा हो। फिर युवती के मस्तक पर हाथ रखकर बोला—

"लो। अपनी कन्या की कसम खाकर कहता हूँ कि आगे से मैं फिर कभी इस डाकू वृत्ति को न करूंगा। क्या, इतने से तुम सन्तुष्ट हो। युवक ?"

"हां भगवान तुम्हें सुमति दे।"—कह कर उसने तावसी के प्रसिद्ध डाकू को मुक्त कर दिया।

× × ×

डाकू का नाम था तैमूर पठान और युवती का नाम सलीमा।

अपने असाधारण शारीरिक बल, लम्बे डीलडौल और क्रूर डाकू वृत्ति के लिए वह प्रसिद्ध था। बड़े बड़े वीरों पर भी उसकी वीरता का आतंक था। इसी बन की सघन गुफाओं में वह रहता था।

उसके कठोर हृदय में केवल एक ही कोमल-स्थान था। यही सलीमा का स्नेह। उससे विवाह करने के लिये कितने ही सरदार अपनी इच्छा प्रकट कर चुके थे। परन्तु सलीमा की स्वीकृति के बिना वह किसी से उसका विवाह करने को सहमत न हुआ था। अपनी कन्या की स्वतन्त्रता में बाधा देना उसे किसी भी तरह अभीष्ट न था।

वह डाकू भी विचित्र प्रकृति का था। धनपति आर्यों को लूट कर निर्धन पठानों की आर्थिक सहायता करना ही उसके जीवन का लक्ष्य था। अब तक कितने ही श्रीमंत आर्यों को लूट कर वह दरिद्र बना चुका था। आर्य जाति की जन्म सिद्ध कायरता से लाभ उठाकर वह उन पर मनमाना अत्याचार करने में भी न चूकता था। आर्य यज्ञशालाओं, देव मन्दिरों तथा

अन्य उपासनागृहों को नष्ट भ्रष्ट करने में तो उसे महान संतोष प्राप्त होता था। अब तक कितने ही प्राचीन मन्दिर उसके हाथों नष्ट हो चुके थे। तावसी का मन्दिर अत्यन्त प्राचीन था। आर्यों के हृदय में इसका विशेष स्थान था। इसे अब तक उसी गौरव से खड़ा देख तैमूर की छाती जल उठती!

उस दिन युवक से परास्त होकर, वह अपनी चिरकालीन डाकू वृत्ति को तिलांजलि दे तो चुका था, परन्तु इस मन्दिर पर उसकी क्रूर दृष्टि अब तक वैसी ही बनी थी।

सलीमा को अपने पिता के इस कुत्सित अभिप्राय का बिलकुल पता न था। वह तो यह सोच कर प्रसन्न और निश्चिन्त थी कि युवक के प्रभाव से उसके पिता ने निन्दनीय कुमार्ग का सर्वथा परित्याग कर दिया है।

युवक की उस दिन की वीरता और उदारता पर भी वह मुग्ध थी। यहां तक कि उसके जिस वीर हृदय को अब तक बड़े बड़े अभिमानी भी न जीत पाए थे, युवक के चरणों में वह उसे अनायास समर्पित कर चुकी थी।

अब भी, उसी स्वच्छन्दता से उस बन की गहन घाटियों में बिहार किया करती और तैमूर के प्रभाव से, उसके इस विनोद में, कोई भी विघ्न डालने का साहस न कर सकता।

× × ×

उस दिन के पश्चात् युवक को फिर भी कितनी ही बार उस

वन में से होकर आने जाने का अवसर पड़ा है और हर बार सलीमा के हाथों से दिया हुआ वन्य प्रसाद उसने प्राप्त किया है। झरने के सुनसान तटों पर, फूलों से भरी एकान्त घाटियों में, वह कितनी ही बार सलीमा के साथ बैठने का सुख उपलब्ध कर चुका है। कितनी ही बार सलीमा की बनाई हुई पुष्प-मालाओं ने उसके वक्षःस्थल पर बिहार किया है। सङ्गीत पटु पक्षियों की मधुर ध्वनि के बीच में गाती हुई सलीमा ने कितनी ही बार उसे मुग्ध किया है। वह सलीमा को अपना हृदय दे चुका था—यह सच था।

एक दिन बसन्त ऋतु के अन्त में, जब अस्तोन्मुख सूर्य की अन्तिम किरणें घाटी के कुसुमित वृक्षों पर नृत्य कर रही थीं, वह सलीमा से कह रहा था—

"मैंने आज जो सन्देश तुम्हें दिया है वह मनुष्य के चिरकल्याण की एक प्राचीन साधना है। आज भगवान के इस दिव्य संदेश में तुम्हें भी दीक्षित हुआ देख मेरी आत्मा संतुष्ट हो चुकी है, सलीमा!"

सलीमा का मुख लाल हो उठा। बोली—

"तुम्हारी आत्मा जिस कार्य से प्रसन्न हो, वही तो मुझे भी प्रिय है, युवक!"

"तो आओ, आनन्द के इस अवसर पर, भगवान् के चरणों में आज हम दोनों अपने मस्तक झुका दें।"—कहकर वह घास

पर बैठ गया। उसके समीप ही सलीमा। नेत्र बन्द कर दोनों ने अपने मस्तक नत किये।

"तुमने भगवान् से क्या प्रार्थना की है, युवक ?"—स्नेहपूर्ण स्वर में सलीमा ने पूछा।

"मैंने प्रार्थना की है कि कम से कम पचास नये व्यक्तियों को इस 'नवीन धर्म' में दीक्षित कर मैं शीघ्र ही तुम्हारे पास लौटूँ और तुम्हें अपनी चिरसंगिनी बनाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूँ।"

"युवक, संसार में अब एक मात्र तुम ही मेरे आराध्यदेव हो। यह शरीर भी तुम्हारा है। परन्तु तो भी तुम्हारी इस प्रतिज्ञा में मैं बाधा न डालूँगी। मैं शपथ करती हूँ कि तुम जब तक अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण नहीं कर लेते—मैं इसी बन में तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी और किसी परपुरुष का मुख न देखूँगी।"—कहते कहते उसका स्वर कांपने लगा और नेत्र सजल हो गये।

उस तेजस्विनी सुन्दरी के सन्मुख युवक का मस्तक अपने आप ही झुक गया।

उसी समय दूर, बन में तैमूर का उच्च स्वर सुनाई दिया। वह चिल्ला चिल्ला कर सलीमा को बुला रहा था।

युवक ने सलीमा से विदाई ली और बन में अदृश्य होगया।

× × ×

अन्त में चार महीने के कठिन परिश्रम के बाद युवक का व्रत पूर्ण हुआ। अपनी प्रतिज्ञा पूर्णकर वह आज ही तावसी लौटा है। कल प्रातःकाल ही वह सलीमा के पास जायगा।

सायंकाल का समय था। अनुराधा अश्रान्त भाव से बही जा रही थी। उसका जल कभी उछलता और कभी धीमा होकर बहता था। रहस्यमय मानवजीवन की भांति सहस्रों लहरें उसमें से एक साथ उठकर फिर उसी में लीन हो जाती थीं। युवक अपनी चौकी पर बैठा निर्निमेष नयनों से इस रहस्य को देख रहा था।

अकस्मात्, दस-बारह अपरिचित आगन्तुकों ने उसकी विचार-शृङ्खला को भग्न कर दिया। वे हांप रहे थे। उनके मुख पर भय और घबराहट के चिन्ह थे।

"क्या बात है?" युवक ने खड़े होकर पूछा।

"मन्दिर पर आक्रमण हो रहा है?" उन्होंने एक-साथ कहा।

"आक्रमण?"

"हां! तैमूर ने डोंडी पिटवा दी है कि वह मन्दिर को तोड़ने जा रहा है। जिसका साहस हो बचा ले।"

"तैमूर ने?"—अत्यन्त आश्चर्य से युवक ने पूछा।

"हां! उसके साथ दो सौ पठानों की भीड़ है।"

"परन्तु मैं तो पार्थिव पूजक नहीं हूँ। कभी मन्दिर में जाता भी नहीं।"—युवक ने उदासीन भाव से कहा।

"तब भी आर्य तो हो। मन्दिर का अपमान सह सकोगे?"

"और तुम्हारे वे पं० चन्द्रशेखर और उनके उपासक; इस समय वे सब क्या कर रहे हैं? क्यों नहीं आगे बढ़कर अपने मन्दिर की रक्षा करते?"

"उनकी कुछ न पूछो, युवक! वे लोग भीतर से कुण्डी चढ़ाये अपने अपने मकानों में पड़े हुए हैं।"

"और उनका मन्दिर?"

"मन्दिर के देवता स्वयं अपनी रक्षा कर लेंगे—शायद यही उनकी धारणा है।"

"नपुंसक कहीं के!"—उसके मुख से अनायास निकल पड़ा।

शरीर पर कवच, पीठ पर ढाल और कमर में तलवार बांध वह क्षण भर में तय्यार हो गया।

मन्दिर के सामने पहुंच उसने देखा, दल के दल पठान इकट्ठे हो रहे हैं। देवता को खुले अपशब्द और मन्दिर की दीवारों पर थूकना जारी है। तलवारें, भाले, परशु कुछ न कुछ सभी के हाथ में है।

इस भयानक दृश्य को देख उसके मुट्ठी भर साथी भी मैदान छोड़कर भाग निकले। अब वह अकेला था। एक दम अकेला। केवल उसके दृढ़ निश्चय, साहस और शान्त विवेकबुद्धि ने उसका साथ न छोड़ा था।

शत्रुओं को अपनी ओर बढ़ते देख वह कूदकर मैदान में आ

गया। उसके हाथ में तलवार और ओठों पर स्वागत की मुसकान थी।

तैमूर आगे बढ़ा। उसके साथ-साथ नत्थेखां और करीम पहलवान। हाथ में नंगे शस्त्र लिये, उनके पीछे २ एक खूनी भीड़; धक्के देती हुई—'मार डालो, खून पीलो'—चिल्लाती हुई।

चुस्त, स्थिर नेत्र, वह अकेला शत्रुओं से लड़ रहा था। रह रह कर उसकी तलवार बिजली की तरह कौंद रही थी। देखते ही देखते बीसियों पठान उसकी तलवार के आगे धरती पर सो गये।

हठात् किसी की तलवार उसपर आकर गिरी। वह संभल न सका और एक लाश से ठोकर खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु अगले ही क्षण में वह फिर उठ खड़ा हुआ और एक ही बार में उसकी तलवार ने मारने वाले को धराशायी कर दिया। यह तैमूर था। परन्तु उस गड़बड़ में किसी का उधर ध्यान न गया।

उसी समय करीम की भारी कुल्हाड़ी युवक के कन्धे को चीरती हुई निकल गई। परन्तु युवक की तलवार ने उसकी गरदन उतार तत्काल अपना प्रतिशोध ले लिया।

अकस्मात्, पीछे से आकर नत्थेखां का भाला उसकी पीठ में घुस गया और अगले ही क्षण में युवक का निर्जीव शरीर तैमूर की लाश पर गिर पड़ा। पचासों शत्रुओं का मानमर्दन कर

वह सदा के लिये उसी चबूतरे पर सो गया—जहां दो साल पहले उसे 'अस्पृश्य' कह कर अपमानित किया गया था।

उसका वीर मस्तक, जो जीवन काल में किसी अन्याय के सामने कभी नहीं झुका था, अब भी उसी शान से ऊँचा उठा हुआ था। उसकी मुख मुद्रा अब भी वैसी ही सुन्दर थी। आंखें वैसी ही मनोहर। अधर वैसे ही मुसकान पूर्ण।

इस तरह तावसी की सबसे पवित्र, सबसे महान आत्मा, संसार से बिदा हो गई, परन्तु मन्दिर बच गया।

× × ×

शनैःशनैः आधी रात हो गई। गांव में सन्नाटा छा गया। केवल कहीं-कहीं कुत्तों के भूंकने का शब्द सुनाई देने लगा। आकाश में चन्द्रमा चमक रहा था।

गांव के चौकीदार ने देखा, मन्दिर के चबूतरे पर दो शरीरों से लिपट कोई निःशब्द रोदन कर रहा है।

यह सलीमा थी !!

मलखान

—हुतात्मा मलखानसिंह रुड़की तहसील के रामपुर ग्राम में रहते थे। उनकी अवस्था पैंतीस वर्ष की थी। आपका सत्याग्रह पर अटल विश्वास था। नांदेड में, जहां गुरु गोविन्दसिंह ने अमरपद प्राप्त किया था—आप पर अभियोग चला और वहां से सपरिश्रम कारावास का दण्ड पाकर आप चञ्चलगुडा जेल में बन्द कर दिये गये। प्रथम जुलाई को आपका अकस्मात् जेल में देहान्त हुआ और इसी चारदीवारी में आपकी दाह क्रिया हुई। आपकी मृत्यु का समाचार गुप्त रखा गया।



श्री मलखान सिंह

ता० १-७-३९ को हैदराबाद जेल में मृत्यु हुई।

मलखान

—सूर्यवंशी सदा हिरोल में रहे हैं। मेरा स्थान पहली ही टुकड़ी में है।

रुड़की के पास रामपुर गांव में सूर्यवंशी ठाकुरों की बस्ती है। मलखानसिंह वहीं रहता है। अपने पूर्वजों का उष्ण रक्त अब भी उसकी धमनियों में बहता है। स्वाधीनता के दिव्य मंत्र का कट्टर उपासक है। पिछले दिनों, जब एक महात्मा के आह्वान पर, कांग्रेस ने नौकरशाही के विरुद्ध सत्याग्रह संग्राम छेड़ा था, मलखान, कांग्रेसी सैन्य में भरती होकर हँसते हँसते भीषण लाठी वर्षा में जा घुसा था। कई मास की सख्त क़ैद भोगकर जब वह विजयी वीर की भांति अपने ग्राम में लौटा था—ग्रामवासियों ने उसका हार्दिक अभिनन्दन किया था।

उस दिन जब रुड़की की पहली टुकडी हैदराबाद जाने लगी मलखान उसके साथ चलने के लिये भी तय्यार था। मित्रों ने बहुतेरा कहा "कम से कम पत्नी को तो सूचित कर दो"—मगर मलखान लापरवाही से बोला—"वह अपने मायके है; अब कौन उसे खबर करता फिरे।"

"और तुम्हारा लड़का।"

"वह भी अपनी मां के पास है।"

"तब तुम्हें इस तरह बालबच्चों से लुक छिप कर नहीं जाने दिया जायगा। दूसरी टुकडी थोड़े दिन बाद रवाना होगी। उसमें चले जाना।" अधिकारियों ने कहा।

"सूर्यवंशी सदा हिरोल❀ में रहे हैं, महाशय! मेरा स्थान पहली ही टुकड़ी में है।" दृढ़ स्वर में मलखान बोला।

अधिकारी चुप हो गये और मलखान को पहली ही टुकड़ी में जाने का गौरव प्राप्त हुआ।

× × ×

एक साल के सपरिश्रम कारावास का दण्ड पा वह जेल की चार दीवारी में बन्द कर दिया गया।

उसके गठीले बदन और तेजस्वी चेहरे पर वार्डरों और जेलदारोगा को भी डाह होती। कष्ट देने के अभिप्राय से वे कभी

❀राजपूती लड़ाइयों में सब से आगे चलने वाली सेना।

कभी उसे ३०-३० सेर ज्वार पीसने के लिए दे देते और न पिस सकने पर खूब मार लगाते। कभी कभी इतना वजन खिंचवाते, मस्त भैंसा भी जिसे मुश्किल से खींच सकता।

मगर सत्याग्रही के लिये कष्टों की शिकायत कहां? उसे तो हँस कर ऐसी विपत्तियों का सामना करना चाहिये। तिसपर मलखान तो मंजा हुआ सिपाही था। गिडगिडाना, घबराना उसे आता ही कहां था?

इस पर वार्डर लोग और भी खिजते। वे दरोग़ा से बिना पूछे ही उसे तरह तरह की मनमानी आज्ञाएँ दे डालते।

एक दिन, कड़ी मेहनत करने के बाद भी, वह २५ सेर बाजरा न पीस सका। वार्डर ताक में थे ही, तुरन्त दारोग़ा से शिकायत की।

"वह तो अच्छा खासा तन्दुरुस्त जवान है। इतना मामूली सा काम भी उससे न हो सका?" दारोगा ने पूछा।

"चाहे तो सब कर सकता है, हुजूर। थाली पर बैठकर कटोरे के कटोरे दाल पी जाता है। मस्त पड़ा है।"

"फिर?"

"मजहब पाक और दीनदारों की खिल्ली उड़ाने से फ़ुरसत मिले तब न?"

"हूँ!"—दारोग़ा का चेहरा गम्भीर हो गया।

सायङ्काल होने से पहले ही मलखान डण्डा बेड़ी में पड़ा था। रात भर अकेला सूनी कोठरी में रहा।

× × ×

धीरे धीरे प्रभात हुआ। कौओं की आवाज़ सुन मलखान ने अनुमान लगाया, सवेरा हो गया है। थोड़ी ही देर में कोठरी का दरवाजा खुला और उसने देखा जेल दारोग़ा हँसते हुए उसके सामने खड़ा है। जब तक मलखान कुछ पूछता, वह स्वयं ही धीरे धीरे बोला—

"बाहर कलम दवात लिए एक वार्डर खड़ा है। यह लो, माफ़ीनामा। मैं तब इस कोठरी से बाहर जाऊँगा, जब इस पर तुम्हारे दस्तखत देख लूँगा।"

"और यदि मैं न करूं तब?" मलखान के स्वर में दृढ़ता थी।

"तो आज की रात देखने के लिए तुम दुनियां में ज़िन्दा न रह सकोगे। बोलो, दोनों में से तुम्हें क्या पसन्द है? रिहाई या मौत?" दारोग़ा बोला।

"ऐसी कायरता पूर्ण रिहाई की अपेक्षा मैं मौत को ज्यादा पसन्द करता हूँ।" मलखान का उत्तर तय्यार था।

"तो यही हो।"—कहकर दारोग़ा बाहर निकल गया और थोड़ी ही देर में चार दीर्घकाय अरब उस कोठरी में घुस आये।

× × ×

.........धीरे धीरे पांच बज गये। सायङ्काल हो आई। जेल के बाहर डूबते सूर्य की मन्द किरणें वृक्षों और पौधों पर पड़ रही थीं। बहुत दूर, गांव के किसान खेतों से लौट रहे थे। गांव को आने वाली पगडंडी पर गाय भैंस के झुण्ड धीरे धीरे घर को चले आ रहे थे, झूमते हुए। ग्वाला गा रहा था।

"मत भूल मुसाफिर, तुझे जाना ही पड़ेगा।"

अकस्मात् मलखान की कोठरी पर से एक बड़ी चिड़िया विकट रुदन करती हुई उड़ गई। यह मलखान की चेतना थी। उसका घायल शरीर शाम होते न होते जेल-अस्पताल में उपस्थित था। बेहोश, संज्ञाहीन।

सुदूर, ८०० मील के फासले पर, अपने मायके में बैठी मलखान की स्त्री को, ठीक उसी समय, मानों किसी ने भालों से बींध दिया। वह स्त्री सुलभ संकोच त्याग कर अपनी मां से बोली—

"मुझे रामपुर भिजवा दो। मेरा जी घबड़ा रहा है। उन्हें......उन्हें........"—उससे आगे न बोला गया। वह उच्छ्वसित स्वर में रोने लगी।

"यह तुझे एकाएक क्या हो गया, बेटी? अरे, तू रो क्यों रही है? क्या बात है?" उसकी मां ने पूछा।

"जैसे कोइ मेरा गला दबा रहा है। दम घोट रहा है!

मां, मां !……वे……वे"—पागलों की तरह वह आकाश के शून्य में ताकने लगी। उसे कौन बुला रहा था ?

उसी समय, ठीक उसी समय, जेल के भैरव चिकित्सालय में मलखान के प्राण पखेरू उड़ गये। इधर उसकी स्त्री चीख मार कर बेहोश हो गई।

× × ×

………जब वह जागी प्रभात हो चुका था उसे होश में आये देख उसके मां बाप आनन्द से उछल पड़े। मां धीरे धीरे उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगी।

अचानक नीचे से डाकिये ने पुकारा। एक तार था। कांपते हाथों खोलकर पिता पढ़ने लगा—

"हैदराबाद जेल में कैदी मलखान का देहान्त हो गया।"

एक बार चीखकर मलखान की पत्नी फिर बेहोश हो गई।

सत्यानन्द

सत्यानन्द संन्यासी अनेक वर्षों से बंगलौर में निवास करते थे। आपका समस्त जीवन परोपकार में ही व्यतीत हुआ। आप गुलबर्गा में गिरफ्तार हुए और आपने सेन्ट्रल जेल हैदराबाद की भीषण भट्टी में अपने नश्वर शरीर को भस्मसात् कर दिया।

संन्यासी

—आर्य जाति को पुरातन सन्देश सुनाना मेरा कर्तव्य है।

मद्रास में एक सुन्दर उद्यान है। बहुत दिनों से एक वृद्ध संन्यासी इस में निवास करते हैं। नाम है, सत्यानन्द। उनका नाम बहुत प्रसिद्ध न था। परन्तु आस पास रहने वाली जनता उन पर बड़ी श्रद्धा रखती थी। मानसिक व्यथाओं से सन्तप्त नागरिक उनके समीप बैठ शांति प्राप्त करते थे। दुखियों के दुःख दूर करना ही उनके जीवन का चरम लक्ष्य था।

एक दिन ग्रीष्म ऋतु के अन्त में, जब वे अपने छोटे से उद्यान में टहल रहे थे और अस्ताचलगामी सूर्य की क्षीण प्रभा

उनके आश्रम वृक्षों पर मन्द मन्द पड़ रही थी, किसी ने उनके कान में आकर कहा—बलिदान चाहिए।

संन्यासी ने चौंक कर पृछा—"कहां ?"

"भाग्य नगर में। बोलो, तय्यार हो ?" आवाज़ ने पृछा।

"आज्ञा स्वीकार है, प्रभु" कहकर संन्यासी ने सिर झुका दिया।

आवाज़ अन्तर्धान हो गई। संन्यासी समाधिस्थ हुए। सुदूर······भाग्य नगर में एक रोमांचकारी दृश्य उन्हें दीख पड़ा। उन्होंने देखा, एक उजाड़ वन में, एक अनन्य सुन्दरी मूर्छित पड़ी है। यज्ञों की पवित्र आहुतियां न मिलने से, अथितियों को दी जाने वाली पौष्टिक बलियें न पाने से, ऋचाओं की मधुर ध्वनियें न सुनने से, वह निस्तेज और मन्द हो चुकी है। उसकी आंखों में आंसू और हृदय में उच्छ्वास है।

संन्यासी का करुणा-पूर्ण हृदय विचलित हो उठा। वे तत्काल उसका कष्ट दूर करने के निमित्त भाग्य नगर को प्रस्थित हुए।

अनेक दिनों की तीर्थ यात्रा के बाद वे राज्य की सीमा में प्रविष्ट हुए। सीमा पर नियुक्त रक्षकों ने पूछा—

"कहां जाता है रे, फ़क़ीर ?"

"आर्य जाति को वैदिक धर्म का पुरातन संदेश सुनाने"—संन्यासी ने शांत भाव से उत्तर दिया।

"गिरफ्तार करलो"। आज्ञा हुई और संन्यासी के तत्काल हथकड़ी बेड़ी डाल दी गईं।

× × ×

सत्यानन्द कर्म काण्डी थे। यज्ञ में आहुति प्रदान किए बिना वे अन्न ग्रहण न करते थे। मगर उस जेल में यज्ञ का क्या काम ? उन्हें यज्ञ करने की आज्ञा न मिली।

कैदियों को नित्य ही भोजन के लिए ज्वार की सूखी रोटियें और दुर्गन्धित तैल पूर्ण दाल परोसी जाती थी। सत्यानन्द को भी वह दी गई। परन्तु अग्नि को तृप्त किए बिना वे भोजन कैसे पा सकते थे ? वार्डरों ने समझा संन्यासी भूख हड़ताल की धमकी दे रहा है। उन्हें तुरन्त काल कोठरी में निर्वासित कर दिया गया।

भयानक प्रहार, दारुण यातनायें, और भीषण अत्याचार सह कर जिस दिन मूर्छित अवस्था में वे अस्पताल पहुंचाये गये, उनकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय थी। उनकी नासिका से रुधिर बह रहा था। गर्दन के पृष्ठ भाग पर गहरी चोट के निशान थे।

सायंकाल हो गई। संसार का समस्त प्रकाश समेट कर सूर्य भगवान अस्ताचल की ओट में छुपने को तय्यार हुए। उधर संन्यासी के बलिदान का समय भी निकट आ पहुँचा। उनके मस्तक पर अन्तिम प्रस्वेद प्रकट हुआ और अन्तिम चेतना से संन्यासी की मूर्छा भङ्ग हो गई। उन्होंने लेटे ही लेटे ओंकार

का स्मरण किया और एक दीर्घ श्वास फेंक कर, वे सदा के लिए देह से मुक्त हो गए।

दो वार्डरों ने उनकी देह को टाट में लपेट, एक सूनी कोठरी में पटक दिया।

× × ×

आश्रम पर अब भी सूर्य चमकता है, पक्षी चहचहाते हैं, फूल खिलते हैं, हवा बहती है। मगर अब वहां सत्यानन्द नहीं दीखते। आत्मज्ञान के पिपासु अब भी भूले भटके उस आश्रम में जाते हैं, मगर संन्यासी का बरद हाथ अब उन्हें प्राप्त नहीं होता।

सत्यानन्द इस संसार में नहीं हैं। सिर्फ उनकी बलिदान कथा सुनाने वाले पक्षी उनके आश्रम वृक्षों में बैठे आर्त-गान किया करते हैं।

रामनाथ

—गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के पन्द्रह विद्यार्थियों ने हैदराबाद-सत्याग्रह का 'श्रीगणेश' किया था। रामनाथ उन्हीं में थे। कविता, प्रकृति वात्सल्य और कोमल भावनाओं से, बीस वर्ष के इस युवक को अत्यन्त प्रेम था। तब भी जेलयात्रा के कठोर मार्ग को इन्होंने अपनी खुशी से ग्रहण किया और वहां के अंकुश तुल्य जीवन में पूरे छः मास बिताये। जेल में इन्हें घातक अतिसार का महारोग लग चुका था। जेलसे मुक्त होने के बाद उसी रोग के कारण इनका स्वर्गवास हुआ।



श्री रामनाथ

ता० ८-६-३६ को बीमारी की अवस्था में घर लौटते पर मृत्यु हुई

खण्डहर की दीवाली

—वनो की स्तब्धता मे जो दिव्य सन्देश सुन पड़ता है, नागरिक वातावरण मे उसका आभास भी कहा ?

दसवीं पास कर लेने के बाद राम एक दम निश्चिन्त हो गया। यह सोचकर कि अब इस जन्म में एलजबरा और चक्रवर्ती से फिर कभी पाला न पड़ेगा, उसका हृदय अन्दर ही अन्दर प्रसन्न था। अब, कालेज-जीवन में उसका एक ही प्रियतम 'सबजेक्ट' था—यही साहित्य। कालीदास और भवभूति के दिव्य सङ्गीत तो उसके चिर-साथी थे ही, अब शैले, कीट्स और वर्ड्सवर्थ में भी उसे आनन्द आने लगा। गङ्गा की नील धाराओं का यौवन, श्यामल वनों के अतृप्त हास्य, पक्षियों के

मधुर सङ्गीत और वन्यफलों के आस्वादन ही, अब उसके आनन्द थे।

उसके बोर्डिङ्ग से चार मील दूर, गङ्गा के तट पर, गहन बनों में एक उजड़ा हुआ 'आश्रम' था। किसी विरक्त तपस्वी ने, किसी अतीत काल में उसकी स्थापना की थी। शतशः 'तापस-कुमार' कभी उसमें शिक्षा प्राप्त करते थे। परन्तु आज वह खण्डहर का एक ढेर मात्र था। कितनी ही बरसातें उसपर से बीत चुकी थीं।

परन्तु तब भी पथिक के हृदय में वह एक रहस्यपूर्ण आश्चर्य भर देता था।

प्रकृति के निर्दोष आनन्दों का आस्वादन करने और वहां की अतीत-स्मृतियों का काल्पनिक सुख अनुभव करने, राम प्रायः वहां जाया करता। उसके भग्न मन्दिर और उदास नीरव-क्षेत्र, अभिमान से सिर उठाये हुए उसके बोर्डिङ्ग-भवनों की अपेक्षा, कहीं अधिक मधुर प्रतीत होते थे। यज्ञवेदी के टूटे-फूटे खम्भे आज भी आश्रम की केन्द्रीय यज्ञशाला का पता देते थे। यूक्लिप्टिस के सुगन्धित वृक्ष के पास आज भी लाल पत्थरों का एक भग्न मन्दिर दीखता था। उसकी छत गिर चुकी थी और जीर्ण दीवारों में से कितने ही छोटे-छोटे वृक्ष, घास-पौदे, बाहर फूट आये थे।

राम का बोर्डिङ्ग उससे बहुत भिन्न था। उसके सुव्यवस्थित,

सुन्दर भवन, दूर से ही दृष्टिगोचर होते थे। नवीन प्रार्थना-मन्दिर का कलश आकाश में अभिमान से सिर उठाये खड़ा था। 'रिजर्वायर' का 'अप-टू-डेट' यन्त्र, दर्शकों पर, सम्भ्रमपूर्ण आतङ्क फैलाने के लिये पर्याप्त था। रात्रिकाल में पचासों विद्युत्प्रदीप उसकी खिड़कियों और झरोखों में से झांका करते थे। 'रेडियो' की मधुर तान दूर से सुनाई पड़ती थी।

परन्तु राम को यह सब पसन्द न था। वह प्रायः कहा करता था कि इस बोर्डिङ्ग के मदभरे भवनों की अपेक्षा वे भग्न खण्डहर उसे कहीं अधिक प्रिय हैं। यहां के उत्फुल्ल वातावरण में वह आनन्द कहां, जो उन उदास क्षेत्रों में भरा पड़ा है? मथुरा में उतना आकर्षण कहां जो उजड़े गोकुल में है। वहां के पखेरुओं की करुण रागिनी और बनों की स्तब्धता में जो दिव्य सन्देश सुन पड़ता है, इस नागरिक वातावरण में उसका आभास भी कहां है?

इसीलिये जब कभी अवसर मिलता, वह बोर्डिङ्ग से वहां भाग जाता। गङ्गा की रेती में बसन्तपञ्चमी और वन्य-लताओं के झूलों में उसके सावन के अनध्याय बीतते।

दीपमाला का उत्सव तो वह विशेष चाव से मनाया करता। उस दिन एक भी उजड़ा हुआ मन्दिर, एक भी खण्डहर, एक भी टूटी-फूटी दीवार, ऐसी न बचती, जिसपर जलते हुए दीपकों की माला न हंस रही होती। यह काम वह केवल आत्म-सन्तोष

के लिये ही नहीं, कर्तव्य बुद्धि की प्रेरणा से भी करता था। उसका विश्वास था कि दीपमाला की अमावस में इस आश्रम के अधिष्ठातृ-देवता अपनी अतीत स्मृतियों को पुनरुज्जीवित करने इन खण्डहरों में आया करते हैं। उस समय, यदि वहां दीपक न जलते हों, तो उन्हें निराश होकर लौट जाना पड़े। इसीलिये दुःख में, सुख में, आधि में, व्याधि में—चाहे कुछ भी हो—उसके इस वार्षिक व्रत में कभी व्याघात न होता। गत आठ वर्षों से दीपमाला का एक भी उत्सव ऐसा न बीता होगा जब उसने उस खण्डहर को आलोकित कर देवताओं को सन्तुष्ट न किया हो।

कालेज-जीवन में अब ये ही उसके एकमात्र आनन्द थे। ये ही आदर्श, ये ही उद्देश्य।

उसके इस विचित्र स्वभाव, कोमल-भावना और प्रकृति-वात्सल्य को देखकर उसके साथियों ने उसका नाम 'विचित्र रसिक' रख छोड़ा था।

× × ×

उस दिन जब भाग्यनगर की शासन-पद्धति के अन्याय-पूर्ण अनुशासन के विरुद्ध भारतव्यापी आन्दोलन चारों ओर फैला और पन्द्रह-विद्यार्थी युवकों ने भाग्यनगर में सर्व प्रथम प्रदर्शन किया, प्रतिज्ञायें दोहराईं—तब राम ने भी आगे बढ़कर उसमें भाग लिया।

विद्रोह की आशङ्का से नगर-रक्षक सैनिक, पहले से ही नगर

में डेरा डाले पड़े थे। सूचना पाते ही वे तत्काल भीड़ में घुस आये और निर्दय लाठी-प्रहार के बाद उन्होंने 'विद्रोही-नेताओं' को गिरफ्तार कर लिया।

राम भी उन्हीं में था। उसे हथकड़ी पहने, सैनिकों के साथ निर्भय मुद्रा से जाते देख, उसके साथियों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ। तापस कन्याओं के सुन्दर शरीर पर वल्कल वस्त्रों को देख, शायद—शकुन्तला के दुष्यन्त को भी इतना आश्चर्य न हुआ होगा, इस कालिदास के कोमल भक्त को, उपनिषद् की क्षुरधारा पर चलने के लिये उद्यत देख, जितना उसके साथियों को हुआ।

कालिदास और उपनिषद् को एक बिन्दु में संग्रहीत होते देख वे सचमुच विमर्श में पड़ गये थे।

विद्रोहियों को न्यायालय के ढोंग के सामने उपस्थित किया गया। वकीलों ने थोड़ा बहुत वाद विवाद किया: नाम-धाम पूछे और अन्त में दो-दो वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड पाकर वे सब कारागार में बन्द कर दिये गये। सुन्दर वस्त्रों के स्थान पर, बन्दियों के कुरते और घुटन्ने पहन वे पूरे कैदी बन गये।

"अब फूलों भरी पर्वत-घाटियां यहां न मिल सकेंगी, रसिक!" एक साथी ने विनोद करते हुए कहा।

'न यहां के वार्डरों का स्वर ही वन्य पक्षियों की तरह मधुर है।"—दूसरे साथी ने आवाज़ कसी।

परन्तु केवल एक बार मुसकरा कर राम चुप हो गया। उसने उत्तर देने की चेष्टा न की।

× × ×

गरमियों के दिन थे। आकाश आग बरसा रहा था। लाल तवे की तरह पृथ्वी तप रही थी। सामने, पहाड़ी पर किसी कर्मचारी का सुन्दर बङ्गला बन रहा था। पहाड़ी के नीचे से ईंटें ढोकर, ऊपर पहुंचाने की 'ड्यूटी' राम को दी गई थी। पद पद पर पथरीले कंकर और गोखरू बिछे थे, परन्तु वह नंगे पांव, अदम्य उत्साह से काम में जुटा था, खून और पसीने में सराबोर!

सचमुच, बन्दी का अस्तित्व ही कितना होता है! जेल के नियमानुसार उसे शिकायत करने का भी अधिकार नहीं होता। उसका जीवन ऐसी यातनाओं के सहने के लिये ही तो बना है।

चार ही मास पश्चात्, उसके शरीर में थकान के लक्षण प्रतीत होने लगे। जो व्याधियां उसके शरीर-मन्दिर में प्रविष्ट होने का साहस न कर सकी थीं, उपयुक्त अवसर पाकर वे भी बे रोक टोक अन्दर घुस गईं। वह बीमार पड़ गया। दिन में २०-२० बार खून के दस्त आने के कारण उसमें चलने की भी शक्ति न रही।

तब भी काम और मेहनत जारी ही थी। चिकित्सक की सम्मति में वह अभी तक बीमार ही न हुआ था। परन्तु राम जानता था, वह कैसा है? मृत्यु की छाया उसके मुख पर स्पष्ट दीख रही थी।

एक दिन, जब ज्वार की आधी रोटी निगल कर वह सायङ्काल के अन्धकार में अपनी कोठड़ी में पड़ा था, उसे दूर से एक सङ्गीत सुनाई पड़ा। कोई गा रहा था—

"वे कैसे मधुमय दिन थे!"

द्रुम फूलों से लद जाते थे, विहग वनों में भर जाते थे,
हम उनमें हँसते गाते थे; जब बसन्त दिन-आते थे॥

—चित्त चंचल हो उठा। राम के मानस-पट पर एकाएक कितनी ही अतीत स्मृतियां—सिनेमा के दृश्यों की तरह नाच उठीं। वे—गङ्गा की धारायें, वे—उसके तट पर होने वाले सुन्दर प्रभात और सायङ्काल, वह कोयल की रागिनी का अनुकरण करते हुए एकांत बनों में दौड़ना-धूपना, वे सुनसान घाटियां, वह खंडहर-आश्रम, सब एक साथ, उसे स्मरण हो आये।

बन्दी-जीवन की कठोर बलिवेदी पर अब जब वह अपने सुकुमार यौवन, स्वास्थ्य और आनन्द का एकान्त बलिदान कर चुका था और कुछ भी शेष न बचा था, केवल एक अन्तिम अभिलाषा उसके हृदय में बच रही थी। जिन भूमियों में वह खेला था, जिन वृक्षों की छाया में उसका शैशव बीता था,

उसके ये दो चार अन्तिम दिन उन्हीं में बीत जायें। अब यही उसकी एक मात्र साधना शेष रह गई थी।

परन्तु उसका उपाय क्या? कोठरी का घना अन्धेरा और भी प्रगाढ़ हो गया। एक ठण्डी सांस ले वह चुपचाप जमीन पर लेट गया।

× × ×

अन्त में—देश के सुदिन लौटे। अभिमानी शासक को प्रजा के तीव्र आन्दोलन के सामने नतमस्तक होना पड़ा। सन्धि हो जाने के बाद, उसे अपना दमन-चक्र भी बन्द कर देना पड़ा। परिणामतः एक ही दिन में सहस्रों बन्दी जेलों से मुक्त कर दिये गये।

पंजर मुक्त पखेरू की तरह राम बन्दीघर से निकल कर भागा। पचास मील प्रति घण्टा की चाल से भागते हुए अग्नि-रथ ने उसे 'आश्रम' में पहुंचाने की भरसक चेष्टा की, परन्तु उसका मनोरथ सफल न हुआ। मृत्यु के दूत उसे बीच में से ही उठाकर ले भागे। उसकी अमर आत्मा अपने उद्देश्य तक न पहुंच, अस्थान में ही, पृथ्वी से उठकर स्वर्ग पहुंच गई। वह न जाने किस अन्धकार से आई थी और कहां विलीन हो गई? कौन जाने—किधर? क्यों?

×

दीपमाला का दिन था; रात्रि का समय। देश के कोने कोने में दीवाली हो रही थी। घर घर में प्रदीप जल रहे थे। परन्तु राम के प्रिय 'आश्रम' में अभी तक कोई प्रदीप नहीं जला था। आश्रम के अधिष्टातृ-देवता प्रति वर्ष की भांति आज भी वहां पधारे थे परन्तु प्रकाश न पाकर अन्धेरे खण्डहरों में भटकते फिर रहे थे।

हठात्—यूक्लिप्टिस-वृक्ष के नीचे एक महान प्रकाश चमक उठा। यह राम की चिता थी। अपने हाथ से प्रतिवर्ष जलाये जाने वाले सैकड़ों दीपकों की जगह आज उसका जलता हुआ शरीर, उस खण्डहर में भटकते हुए देवताओं को पथ प्रदर्शन करा रहा था। खण्डहर की दीवाली आज भी व्यर्थ न गई थी।

शान्ति प्रकाश

—विद्यार्थी शान्ति प्रकाश देहली के श्रीयुत रामरत्न शर्मा टी० सी० का सुपुत्र था। उस्मानाबाद जेल में उसे भयङ्कर आन्त्रज्वर हुआ, जिसमें वह कई दिन तक जीवन-मृत्यु की सन्दिग्ध स्थिति में पड़ा रहा। जेल-अधिकारी उसे मुक्त करने के लिये उद्यत थे, परन्तु शर्त यह थी कि वह—माफी मांगले। उसने साफ इन्कार कर दिया। उसके पिता को तार देकर बुलाया गया। उनके सामने भी यही शर्त पेश की गई। परन्तु उन्होंने भी अपने पुत्र को माफी मांगने की सलाह न दी। अन्त में २७ जुलाई १९३९ को १८ वर्ष के इस 'अभिनव-हकीकत' ने उस्माना-बाद जेल में अपनी भौतिक लीला संवरण की।



श्री शान्तिप्रकाश जी कलानौर अकवरी, इनकी मृत्यु उस्मानाबाद
जेल में ता० २५-५-३१ को हुई।

हृदय-परिवर्तन

—आप लोग भले ही मुझे अपराधी बताते रहें—भगवान् के दरबार में मैं निरपराध हूं।

तत्त्व वेत्ताओं का कथन है कि पाप-पुण्य, सुख-दुःख, जय-पराजय, उत्थान-पतन आदि विरोधी भावों का अन्तर्द्वन्द्व ही संसार के जीवन का स्रोत है। अन्धकार के बिना प्रकाश और अशुभ के बिना शुभ नीरस और अपूर्ण है। संसार की यह विचित्रता ही प्राणि-जगत् का सौन्दर्य है।

एक संगीत का प्रेमी दीखता है, दूसरा शराब का; तीसरा कथा पूजन पर अनुरक्त है, चौथा खेल-तमाशे पर। कहीं बल है, कही निर्बलता। कहीं विलास है, कहीं भक्ति। यही संसार का चक्र है।

दाऊदखां को गालियों का शौक़ था। उठते बैठते उसे सदा इन्हीं का ध्यान रहता। ऐसा जान पड़ता, उसके जीवन का यही लक्ष्य है।

जेल भर में वह गालियों का 'मार्मिक-विद्वान्' माना जाता। उसने स्वयं भी कितनी ही नई गालियों का 'आविष्कार' किया था। हरजस-सराय की प्रसिद्ध बब्बन भटियारन से एक बार उसका खुला शास्त्रार्थ भी हुआ था। अपनी समस्त योग्यता व्यय करके भी श्रीमती बब्बन १११ से अधिक गालियों का उच्चारण न कर सकी थीं, परन्तु 'असिस्टेण्ट जेलर' दाऊदखां, उससे कहीं आगे, १५० तक जा पहुंचा था। इनमें कितनी ही ऐसी गालियें भी थीं, जिन्हें सुनकर स्वयं श्रीमती बब्बन को भी अपने कान मूंद लेने पड़े थे।

गालियों का चाव पूरा करने के लिये वह बहुधा कैदियों को आपस में लड़ा भी दिया करता और जब वे तरह तरह की गालियों के 'अमोघास्त्र' एक दूसरे पर बरसाने लगते, वह तन्मय होकर उनका आनन्द लेता। ऐसा प्रतीत होता, कोई भक्तजन अपने भगवान् की कथा का रसपान कर रहा है।

कामिनी-कांचन और गाली, संसार में अब ये ही तीन अमर पदार्थ उसके लिये अमृत थे। इनका परमानन्द प्राप्त करना ही उसके जीवन का परम लक्ष्य था।

× × ×

इधर कुछ दिनों से वह बहुत उदास रहने लगा था। उसे कभी २ ज्वर और अजीर्ण की शिकायत भी हो जाती।

नव वर्ष के प्रारम्भ होते ही, उसके बन्दीघर में जो एक अभूतपूर्व परिवर्तन हो गया था, सम्भवतः वही उसकी उदासी का कारण था।

शतशः अपरिचित नवीन बन्दी, न जाने कहां से लाकर उसकी जेल में भर दिये गये थे।

उसके वे पुराने, परिचित कैदी—जिन्हें देखने सुनने का उसे एक मोहमय अभ्यास सा हो गया था—या तो जेल से मुक्त कर दिये गये थे, या उनका दूसरी जेलों में 'बदरखा' किया जा चुका था। अब वह जिधर देखता उसे नई मूर्तियें, नये स्वभाव और नई ही बातें नज़र आतीं।

चिरकाल से उसका यह स्थिर मन्तव्य था कि कैदी होकर जिसे चोरी, असत्य भाषण और चापलूसी आदि व्यावहारिक कर्तव्यों का अभ्यास न हो—इस संसार में उसका कैदी कहलाना ही व्यर्थ है। इन नये कैदियों में उसे इन गुणों का नितान्त अभाव दीख रहा था। शायद, इन अक्षम्य न्यूनताओं को वह सह भी लेता, यदि सिर्फ गाली देने का ही हुनर इन्हें याद होता। परन्तु इधर, इस मामूली सी बात का भी सफ़ाया था। तिस पर, १०० की जगह ४०० कैदी भर देने से जेल की व्यवस्थापद्धति भी अस्त-व्यस्त हो गई थी। दाऊदखां पर काम का इतना बोझ

आ पड़ा था कि उसे बस्ती में अपने सुपरिचित स्थानों में जाने का अवसर भी प्राप्त न होता।

तब इस नीरस और शुष्क जीवन से क्या लाभ ? जिस 'असिस्टेण्ट जेलरी' का उसे इतना अभिमान था अब वह भी उसे भार प्रतीत होने लगी। इन नवागन्तुकों से उसे इतनी घृणा हो गई कि इन्हें देख उसके हाड़ जल उठते। वह जैसे भी बने, इनसे पीछा छुड़ाने का उपाय सोचा करता।

एक दिन वार्ताप्रसंग में उसे जेलर के मुख से यह विदित हुआ कि सरकार इन अवांछनीय कैदियों को जेल में देर तक रखना नहीं चाहती। यदि किसी तरह इन्हें जेल से बाहर निकाला जा सके तो उसे बड़ी प्रसन्नता होगी।

दाऊद की आंखें चमक उठीं। बोला—"यह कौन कठिन काम है। कल ही लो।"

"परन्तु एक शर्त है।"

"वह क्या ?"

"बाहर निकालने से पूर्व सरकारी माफीनामों पर उनके हस्ताक्षर ले लेने आवश्यक हैं।"

दाऊद ज़रा चिन्ता में पड़ गया।

"जो कर्मचारी जितने ही अधिक माफीनामे भरवायेगा, उतना ही अधिक उसे पुरस्कार दिया जायगा और तरक्की जो मिलेगी, वह अलग।" जेलर ने आंख मारते हुए कहा।

दाऊद को उस रात नींद न आई। पचासों नई गालियों का आविष्कार करने वाला उसका मस्तिष्क अब रात भर उन उपायों के आविष्कार में लगा रहा जिनके बल पर, वह इन हठीले बन्दियों को सरकारी क्षमा पत्रों पर हस्ताक्षर करने के लिए बाधित कर सकेगा!

प्रभात होते न होते उसकी योजना तय्यार थी।

× × ×

बन्दीघर के आंगन में एक कूप था। कैदियों को उसमें से, सौ-सवा सौ डोल पानी, नित्य खेंचना होता था। आज से ५ सेर के छोटे डोल की जगह २० सेर का नया भारी डोल रखवा दिया गया और सूत की रस्सी की जगह लोहे की पतली तार, ताकि एक डोल खेंचने से ही बन्दी के दोनों हाथों से रक्त बहने लगे।

साथ ही ८-१० कैदियों को नित्य 'दण्ड-गृह' के दर्शन करने पड़ते। वहां उन्हें इस सीमातक ताड़ना दी जाती कि वे मूर्छित हो जाते और फिर उसी अचेतनावस्था में सरकारी क्षमा पत्रों पर उनके अँगूठे लगवा लिये जाते। अगले ही दिन उन्हें जेल से मुक्त कर दिया जाता।

एक ही महीने में दाऊद की योजनायें आशातीत फल लाईं। पचासों कैदी जेल से बाहर धकेल दिये गये। संख्या दिन-प्रतिदिन घटने लगी।

परन्तु अब भी कितने ही ऐसे धैर्य के धनी इन कैदियों में बच रहे थे, दाऊद की समस्त योजनायें मिलकर भी जिनकी दृढ़ता को पराजित न कर सकी थीं।

सफलता, असफलता—जय पराजय, दोनों अवस्थाओं को धैर्य पूर्वक सहन कर सकने के लिये, जिस लोह-हृदय की आवश्यकता होती है—वह दाऊद में न था। एक मास से लगातार मिलती हुई सफलता के पश्चात् इस असफलता को वह किसी भी तरह सह न सका। इन थोड़े से अवशिष्ट कैदियों के सम्मुख अपनी योजनाओं को असफल होते देख उसके धैर्य का बांध भग्न हो गया और उसका उग्र हृदय पहले से भी अधिक कठोर हो उठा।

जेल के दण्ड-गृह में अब नित्य ही उसका 'न्यायालय' जमने लगा। वह स्वयं एक ऊँची वेदी पर मसनद के सहारे बैठ जाता। आठ दस सशस्त्र वार्डर, जिनकी ऊँची मूँछें, राक्षसी नेत्र और सुगठित शरीर, क्रूरता का प्रत्यक्ष अवतार प्रतीत होते—उसके समीप ही खड़े रहते। प्रतिदिन, एक के बाद एक, दस-बारह कैदी उसके सम्मुख उपस्थित किये जाते। पहले तो वह उन्हें समझाता, पुरस्कार का प्रलोभन देता—फिर अन्त में जब वे उसकी आज्ञा को किसी भी तरह स्वीकार न करते, वह उन्हें इन्हीं जल्लादों के हाथ सौंप देता।

उसका मुख प्रतिहिंसा के उल्लास से चमक उठता जब वह

अपने सामने, इनके फटते हुए मस्तकों और गिरते हुए शरीरों को देखता।

एक दिन एक कुमार-कैदी उसके सम्मुख उपस्थित किया गया।

"तुम्हारा नाम"? दाऊद ने जरा चौंक कर पूछा।

"शान्ति"

"उम्र ?"

"१८ वर्ष"

"निवास स्थान ?"

"कलानौर अकबरी। जिला गुरदासपुर"

कैदी जितनी ही अधिक शान्ति से उत्तर देता, दाऊद की क्रोधाग्नि उतनी ही भड़कती जाती।

"अफसोस! तुम सरीखे लड़के को जेलखाने में भेजते हुए तुम्हारे मां-बाप को कुछ भी शरम न आई।" अन्त में उसने कहा।

"मैं अपने माता-पिता से बिना पूछे, घर से भाग कर यहां आया हूँ।" शान्ति ने कहा—

"तब तो तुझे माफी मांगकर बहुत जल्द घर वापस लौट जाना चाहिए। तेरे बिना तेरी मां कितना अफसोस करती होगी, तुझे यह ख्याल नहीं आता ?"

"परन्तु जब मेरी माता यह सुनेगी कि मैं क्षमा मांगकर आया हूँ—वह और भी अधिक अफसोस करेगी !"

"हूँ ?—तब तू माफी मांगने को किसी तरह तय्यार नहीं" —दांत पीसते हुए दाऊद ने कहा।

"मैं तो आप से पहले ही निवेदन कर चुका।"—शान्ति ने अविचलित भाव से उत्तर दिया।

"इससे दस दिन तक, तार की रस्सी वाले ५० डोल प्रतिदिन खिंचवाये जावें और १२ से ४ बजे तक धूप में नंगे पांव, नंगे सिर खड़ा किया जावे। देखें, यह कबतक माफी नहीं मांगता !" —दाऊद ने कठोरता से कहा।

दो वार्डरों ने आगे बढ़कर शान्ति को पकड़ लिया और बाहर निकाल ले गये।

× × ×

पं० रामरत्न शर्मा दिल्ली में टिकट कलक्टर हैं। जब से उनकी पत्नी को यह विदित हुआ है कि उसका खोया हुआ पुत्र शान्ति जेल में बन्द है, उसने खाना पीना तक छोड़ दिया है। शर्मा जी के बहुतेरा समझाने बुझाने पर भी उसका सन्तप्त हृदय किसी तरह शान्त नहीं होता।

"तब तुम उसे क्षमा मांगने के लिये क्यों नहीं कह देतीं ? यह रोज़ की झिक २ तो ख़तम होगी।" —शर्मा जी ने एक दिन पत्नी से कहा।

"तुम्हीं क्यों नहीं कह देते। तुम भी तो उसके पिता हो।"

"मेरी बात छोड़ो। मैं उसे ऐसी कायर सम्मति देना पसन्द ही नहीं करता।"

"तो क्या तुम लोगों ने घर भर में एक मुझे ही कायर समझ रक्खा है? मैं भी उसे क्षमा मांगने के लिये क्यों कहने लगी?"

"और यह रोना धोना जारी ही रहेगा?"

"कितने निठुर हो तुम।" विचलित होकर पत्नी ने कहा। क्या एक दुखी मां को अपने दुखी पुत्र के लिये रोने का अधिकार भी नहीं है?

"अधीरता और दृढ़ता—दोनों बातें साथ साथ नहीं चला करतीं, शान्ति की मां। मेरे कहने का सिर्फ यही मतलब था।" स्निग्ध स्वर में शर्मा जी बोले।

परन्तु पत्नी का बांध टूट चुका था। वह सिसक सिसक कर रो रही थी।

उसी दिन, दोपहर का रूखा सूखा भोजन पाकर शर्मा जी चुपचाप अपनी चारपाई पर लेटे हुए थे और उनकी पत्नी रसोई में बासन मांज रही थी, कि डाकिया एक बड़ा लिफाफा उनके सामने फेंक कर चला गया।

शर्मा जी का दिल धड़कने लगा। वे घबरा कर उठ बैठे। उन्होंने लिफाफा उठा तो लिया परन्तु उसे खोलते हुए उन्हें भय

मालूम देने लगा। उनकी दशा ठीक उस बच्चे सरीखी हो गई जो रात को अन्धेरी कोठरी में घुसते हुए इसलिये डरता है कि कहीं उसमें भूत न बैठा हो।

"कहां से आया है ?" —चिल्लाकर शान्ति की मां ने पूछा।

"मोहर तो जेल की ही लगी है।"

पल भर में, राख से भरे हुए हाथ लिये, शान्ति की मां उनकी खाट के पास खड़ी थी।

"पढ़ो क्या लिखा है ?"

कांपते हाथों पत्र खोलकर शर्मा जी पढ़ने का साहस करने लगे। पत्र पर जेलर के हस्ताक्षर थे। लिखा था—

"तुम्हारा बेटा शान्ति आज ६ दिन से टायफाइड में मुब्तिला है। अगर मिलना चाहो तो आ जाओ।"

शर्मा जी के हाथ से पत्र गिर पड़ा। एक अज्ञात आशङ्का से माता का हृदय कांपने लगा और वह चीख मारकर धरती पर गिर पड़ी।

× × ×

"कौन ? पिता जी ? आप आगये ?"

"हां बेटा, मैं आया हूँ। अब कैसी तबियत है तुम्हारी ?"

"और अम्मां को नहीं लाये ?"

"तुम जल्दी जल्दी अच्छे हो जाओ, बेटा। फिर हम सब तुम्हारी अम्मां के पास ही चलेंगे।"

एक बार हँसकर शान्ति चुप हो गया। उसकी आंखों में दो बूंद आंसू झलक आये।

शर्मा जी खड़े खड़े उस अस्थिपञ्जर को देखने लगे। आंखें गढ़ों में धँस गई थीं। चेहरा सूखकर काला पड़ गया था! ओठों पर काली पपड़ियां जम गई थीं। दोनों पांवों के तलवे छालों और फफोलों से सूजे हुए थे, उनमें से जल रिस रहा था। हथेलियों की दुर्दशा तो देखी ही न जाती थी।

"अगर आप चाहें तो अब भी अपने बेटे को बचा सकते हैं, बाबू साहब"—पीछे से आकर दाऊद खां ने शर्मा जी से कहा।

"अब क्या रखा है यहां बचाने को। सोने का महल तो मिट्टी बन ही चुका"—कहकर शर्मा जी बच्चों की तरह रोने लगे।

करुणा किसे कहते हैं, आज तक जिसे इसका पता न था, दाऊदखां का वह कठोर हृदय भी आज शर्मा जी की निराशा देख द्रवित हो उठा। अपनी भारी आवाज़ को यथा सम्भव कोमल बनाते हुए उसने कहा—

"अगर आप एक बार भी कह दें तो वह माफीनामे पर दस्तख़त कर अभी छूट सकता है। मैं सच कहता हूँ, वह बच जायगा।"

उसकी ओर घृणा पूर्वक देखते हुए शर्मा जी बोले—"तो आप पूछ देखें न, मान जाय तो अच्छा ही है।"

दाऊद आगे बढ़कर शान्ति की खाट के पास पहुंचा। देखा, कैदी चुपचाप सो रहा है। न जाने कब तक वह उसकी मुख मुद्रा को एक टक देखता रहा। फिर जब शान्ति ने आंखें खोलीं, वह शनैः २ उसके सिर पर हाथ फेरते हुए बोला—

"अब कैसी तबियत है तुम्हारी, बेटा शान्ति ?······" वह इतना ही कह सका। अपना अभिप्राय उससे कहते न बना।

बुझते हुए प्रदीप में जैसे ज्योति चमक उठती है कैदी के मलिन मुख पर हास्य की क्षीण रेखा दौड़ गई। दाऊद के नेत्रों में अपने विशाल नेत्र गाड़ कर उसने धीरे २ यों कहना प्रारम्भ किया—

"मैं जानता हूँ आप क्या कहना चाहते हैं। परन्तु मुझे दुख है मैं अब भी आपकी बात नहीं मान सकता । जिन आज्ञाओं को भङ्ग करने के कारण आपका मनुष्य-रचित कानून मुझे अपराधी ठहराता है, धार्मिक दृष्टि से वह अपराध नहीं; पुण्य है। क्षमा मांगना तो अपराधियों का काम है। मैंने अपराध ही कौनसा किया है ? आप लोग भले ही मुझे अपराधी बताते रहें परन्तु भगवान् के दरबार में मैं सर्वथा निरपराध हूँ।······"

वह आगे न बोल सका। थक कर चुप हो गया।

दाऊद को जैसे काठ मार गया हो। उसमें उठने की शक्ति भी न रही। कैदी के अन्तिम वाक्यों ने आज अकस्मात् उसके हृदय पट खोल दिये और उनमें से होकर स्वर्गीय प्रकाश शनैः

शनैः उसमें प्रकाशित हो उठा। चालीस वर्ष का गहन अन्धकार आंसू बन आंखों के मार्ग से बहने लगा। अपना सिर शान्ति की खाट पर रख वह चुपचाप बैठ गया।

अन्त में जब उसने अपना सिर ऊपर उठाया, देखा शान्ति के प्राण पक्षी देह-पिञ्जर से मुक्त हो चुके हैं। उसके नेत्र बन्द हैं और कुछ खुले हुए ओठ, मानों अब भी अनन्त निद्रा में अपनी स्नेहमयी मां को पुकार रहे हैं।

इसके बाद फिर किसी ने दाऊद को न देखा।

सोसनगर से देवगढ़ जाने वाली सड़क के एक निर्जन प्रान्त में किसी ने अभी हाल में जो एक प्याऊ बैठाई है, एक नवीन संन्यासी वहां प्रायः पथिकों को पानी पिलाते हुए देखा जाता है। धूप हो, बरसात; दिन हो रात; वह हर समय नङ्गे पांव, नङ्गे सिर, सड़क के किनारे प्याऊ के पास खड़ा दीखता है। उसे बैठे हुए आज तक कभी किसी ने नहीं देखा। वह जब किसी पथिक को आते देखता है, दौड़कर उसके आतिथ्य का प्रबन्ध करता है। कुएं पर रखे हुए डोल में, जिसे वह बहुधा खेंचते हुए देखा जाता है, पतली तार की रस्सी देख पथिकों को आश्चर्य होता है। परन्तु पूछने पर वह कह दिया करता है, रस्सी जल्दी टूट जाती है, तार टिकाऊ है।

गालियों से उसे इतनी चिढ़ है कि प्याऊ की दीवारों पर भी लिखा दीखता है—यहां गाली देने और शराब पीने की सख्त मुमानियत है।

लोगों का ख़याल है यह दाऊद है।

वेद प्रकाश

हैदराबाद के गंजोटी नगर में फाल्गुण शुक्ला पञ्चमी सा० सम्वत् १८३७ को शिववसप्पा के यहां वेदप्रकाश का जन्म हुआ था। इनका मूल नाम दासमय्या था। ये परम धर्म प्रेमी और शस्त्र विद्या में बड़े चतुर थे। उनके शत्रुओं ने कई बार उन्हें मारने के प्रयत्न किये परन्तु अपनी वीरता से वे सब आक्रमणों से बचते रहे। ४ मार्गशीर्ष १९९४ विक्रमी को बस्ती के मुसल्मानों ने हिन्दुओं पर आक्रमण किया। वेद प्रकाश निर्बलों की सहायता करने निहत्थे ही दौड़ पड़े। मुसल्मानों की भीड़ ने उन्हें पकड़ लिया और तलवार से उनका गला काट दिया।

भिक्षुक

—वह मुसल्मान होकर भी हिन्दुओं को श्रद्धा और सन्मान से देखता ।

आज से लगभग बीस वर्ष पूर्व की बात है। ग्रीष्म ऋतु के एक सुन्दर प्रभात में शिव बसप्पा के मकान पर एक भिक्षुक ने आकर हांक लगाई—जो दे उसका भी भला, जो न दे उसका भी भला : या अली मौला ! !

घर का द्वार खुला था और कच्चे आंगन में एक चारपाई पर बैठा शिव बसप्पा अपनी एक वर्षीया कन्या से शिशु विनोद कर रहा था। उसके पास ही पांच वर्ष का एक बालक काठ के खिलौने से खेल रहा था। हांक सुनते ही बालक खिलौना छोड़ भिक्षुक की तरफ देखने लगा।

भिक्षुक की आंखों से दीनता बरस रही थी। सिरके बाल बेहिसाब बढ़े हुए, दाढ़ी अस्त व्यस्त, हाथ पांव फटे हुए—धूलि धूसरित। एक फटे हुए पाजामे के अतिरिक्त उसके कृश शरीर पर और कोई वस्त्र न था। बालक थोड़ी देर तक एक टक उस दीन मूर्ति को देखता रहा, फिर अकस्मात् उसके हृदय में एक विचार आया। वह उठ कर रसोई घर की तरफ भागा और दो मोटी चपातियें लाकर उसने भिक्षुक की झोली में डाल दीं।

"खुदा भला करे"—कहता हुआ भिक्षुक आगे बढ़ गया और बालक द्वार से सिर बाहर निकाल देर तक उसे देखता रहा

अब भिक्षुक नित्य ही घर पर आने लगा और बालक नित्य ही उसे भिक्षा देने लगा। पूर्णिमा, अमावस, अष्टमी तथा अन्य पर्वों पर, जब कभी घर में पूरी मोहनभोग आदि विशेष भोजन बनता, बालक अपने भाग में से कुछ बचा लेता और जब भिक्षुक आता, मां की आंख बचा, उसकी झोली में डाल देता। उसे भिक्षुक से इतना स्नेह होगया कि जब तक वह उसे भिक्षा न दे लेता, बेचैन सा रहता।

इसी तरह पांच वर्ष बीत गए; परन्तु बालक की दानशीलता में अन्तर न पड़ा। आंधी हो पानी, हेमन्त हो जेठ; भिक्षुक नित्य ही उस घर पर हांक लगाता और उसे नित्य ही एक परम सुन्दर बालक भिक्षान्न लिए द्वार पर खड़ा मिलता। भिक्षुक की

झोली फैल जाती, बालक भिक्षा डाल देता, वह आशीर्वाद देता और चला जाता—यही नित्य का क्रम था।

परन्तु एक दिन भिक्षुक न आया। बालक बहुत देर तक द्वार पर खड़ा उसकी प्रतीक्षा करता रहा परन्तु वह न आया। अन्त में निराश हो वह पाठशाला चला गया। लेकिन—जब दूसरे दिन भी भिक्षुक न आया, बालक की चिन्ता बढ़ गई। वह उस दिन पाठशाला न जा, अपने कई साथियों समेत दिन भर बस्ती में भटकता फिरा। बस्ती के बाहर—जहां भिक्षुक प्रायः बैठा करते—वह वहां भी पहुंचा; परन्तु उसे कहीं भी अपने प्रिय भिक्षुक का पता न चला। अत्यन्त उदास हो वह घर लौटा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे किसी ने उसकी चिर-संचित निधि छीन ली हो। भिक्षुक के विना उसे बस्ती सूनी और नीरस दीखने लगी।

× × ×

दस वर्ष बीत गए। उन दिनों बस्ती में करीमखां की धूम थी। वह कौन था, कहां से आया था—यह तो कोई न जानता; परन्तु उसकी दूकान खूब चल रही थी—यह सभी जानते थे। एक तो उसकी दूकान में माल काफ़ी था, अच्छी बड़ी दूकान थी; तिसपर दाम भी एक ही बोले जाते और गाहकों से अत्यन्त नम्रता और सभ्यता से व्यवहार किया जाता।

करीमखां की आयु चालीस साल के लगभग होगी। शरीर दुबला—पतला और निर्बल था। ऐसा जान पड़ता पूर्व जीवन में उसने अनेक कष्ट झेले हैं। उसके पांव फैले हुए—कुरूप और हाथ की हथेलियां कठोर थीं। परन्तु उसका हृदय कठोर न था। उस में मनुष्य मात्र के लिए स्नेह और धन्यवाद का सागर लहराता था। वह मुसल्मान होकर भी हिन्दुओं को श्रद्धा और सन्मान से देखता। बस्ती में सैंकड़ों हिन्दू उसके मित्र थे। दूकान पर बैठकर वह—आइये हुजूर; पधारिये, अन्न-दाता—ऐसे ही मधुर-बोलियों से ग्राहकों का स्वागत करता।

बस्ती में सालभर से हिन्दू-मुसल्मानों में तनातनी चली आरही थी। मन्दिरों और मसजिदों में नित्य ही पण्डितों और मौलवियों के उत्तेजक-व्याख्यान हुआ करते। पण्डित कहते—यवन म्लेच्छों के स्पर्श से हिन्दू को दोष लगता है, इसलिए उनके अपवित्र हाथों से खाने पीने के पदार्थ न लेने चाहिएँ। मौलवी कहते—इस्लामी सभ्यता और हिन्दू संस्कृति में ज़मीन आसमान का फर्क है। दोनों में इत्तहाद हो ही नहीं सकता। परन्तु करीम के स्निग्ध हृदय पर ऐसे उपदेश क्षण भर भी न टिक पाते। वह एक कान से सुनकर उन्हें तुरन्त दूसरे कान से निकाल देता।

उसकी दूकान किराये पर थी उसके मालिक थे, सेठ चांदमल। वे अब तक करीम से पांच रुपया मासिक ही लेते आरहे थे।

मगर, जब उन्हें दूकान खूब चलती दीखी, उन्होंने चट किराया दुगना कर दिया। करीम के लिए यह बोझ असह्य था। मगर सेठजी किसी भी तरह किराया कम करने को तैयार न हुए। दूकान दूसरी जगह बदलने से बिक्री मारे जाने का भय था, इसलिए करीम भी दूकान छोड़ने का साहस न कर रहा था। इसी दुविधा में एक वर्ष बीत गया।

दूसरा वर्ष लगते ही सेठ जी की भूख और बढ़ गई। करीम की प्रकृति को तो वे समझ ही चुके थे; उन्होंने उठा कर उस पर सालभर के किराए की नालिश कर दी। बस्ती के मुसल्मान उससे खिंचे ही बैठे थे, किसी ने सहायता न की और दो ही मास बाद अदालत ने करीम के विरुद्ध पूरे डेढ सौ रुपये की डिग्री कर दी। इतनी रकम एक साथ चुकाने की उस में शक्ति ही कहां थी? निदान दूकान नीलाम हुई और देखते ही देखते सेठजी के विशाल उदर में उसका सुखचन्द्र सदा के लिए अस्त होगया।

इस तरह सेठ जी को विजय श्री तो अवश्य मिली परन्तु उन्होंने करीम का हृदय भी सदा के लिये बदल दिया। दो मास पूर्व मौलवियों की पचासों दलीलें जिसे न बदल पाई थीं, वह अब एक ही क्षण में अनायास बदल गया। अब बस्ती भर में करीम सरीखा 'तास्सुबी' मुसलमान खोजकर मिलना भी कठिन था।

बसप्पा का पुत्र दासमय्या—चूँकि यही उस बालक का नाम था—अब बीस बरस का युवक हो गया था। बस्ती के सुख-दुःख में वह अत्यन्त उत्साह से भाग लेता और जहां कहीं किसी को कष्ट में देखता, दौड़कर सहायता करता। अनाथों के लिये चन्दा जमा करने, भूखों के लिये भोजन जुटाने और बीमारों के लिये चिकित्सा की व्यवस्था करने में ही उसका अधिकांश समय व्यतीत होता।

यदि कोई और समय होता, शायद उसकी तरफ़ लोगों का ध्यान न भी जाता, परन्तु वह हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का ज़माना था। छोटी से छोटी हरकत पर भी किसी न किसी साजिश और षडयन्त्र का सँदेह कर लिया जाता था। अत्यन्त तुच्छ बात में भी कूटनीति की गन्ध सूँघ ली जाती थी! बस्ती में दासमय्या के समस्त सेवा-कार्य सन्दिग्ध दृष्टि से देखे जाने लगे। उनके मूल में किसी भयानक कुचक्र, किसी भयानक षडयन्त्र का अनुमान किया जाने लगा। देखते ही देखते हिन्दू मुसलमानों का परम बन्धु दासमय्या, चाणक्य से भी बढ़कर कुटिल और सांप से भी बढ़कर विषधर बन गया। ऐसे भयंकर व्यक्ति को राह से हटा देने के लिये करीम से बढ़कर उपयुक्त व्यक्ति और कौन होता?

रात के आठ बज चुके थे। नीलाकाश में चन्द्रमा हँस रहा था। कातिक का शीत पवन शनैः शनैः बह रहा था। सतवाजी

किसान दायें हाथ में लाठी और बायें कन्धे पर मूंगफलियों का थैला लटकाये, भैंसों को हांकता हुआ अपने खेतों से लौट रहा था। मस्त, निश्चिन्त।

अकस्मात् उसे बस्ती में कोलाहल सुनाई पड़ा। उसने देखा, अस्पताल के समीप साठ-सत्तर जन उच्च स्वर से चिल्ला रहे हैं। उसका घर पास ही था। भैंसों को घर में बांध, वह जैसे ही तमाशा देखने के लिये घर से बाहर निकलने लगा, उसने देखा भीड़ उसके द्वार पर ही खड़ी है। कल्लू और बशीर पहलवान दासमय्या को दोनों तरफ से पकड़े हुए हैं और लगभग डेढ़ सौ आदमियों की भीड़ 'ओ अली दौला' चिल्लाती हुई उसे घेरे खड़ी है।

सतवाजी निर्भय और बलिष्ठ व्यक्ति था। दासमय्या को पुत्र की तरह मानता था। उसे इस तरह विपत्ति ग्रस्त देख उसके नेत्रों में खून उतर आया। उसने अपनी बहन को पुकारा और अपनी तलवार मंगवाई। तलवार धरती पर आकर गिरी और ज्यों ही उसे उठाने के लिये वह झुका—तड़ाक, तड़ाक—चार लाठियें उसके कन्धे और पीठ पर गिरीं। वह चीखा और अचेत होकर धरती पर गिर पड़ा।

परन्तु दासमय्या साहसी युवक था। एक ही झटके में उसने कल्लू और बशीर से अपने आपको छुड़ा लिया और कूदकर सतवाजी की तलवार पर लपका। परन्तु एक साथ आठ आदमी

उस पर टूट पड़े और सबने मिलकर उसे धरती पर पटक दिया। कल्लू और बशीर उसकी टांगों पर बैठ गये और गिरोह के नेता करीमखां ने उसकी छाती पर बैठ उसके दोनों हाथ पकड़ लिये।

दासमय्या चौंका। अपने सामने बैठे करीम को वह आंखें फाड़कर देख रहा था। अकस्मात्, पन्द्रह वर्ष पूर्व की अनेक मधुर स्मृतियें उसकी आंखों के सामने घूमने लगीं। वह, प्रभात काल में नित्य दीखने वाली दीन हीन मूर्ति—वह, धूलि धूसरित बालों वाला चिरपरिचित मुख—वे, कातर आंखें···।

"भिक्षुक! प्रिय भिक्षुक!!"—दासमय्या एक साथ चिल्लाया और उधर उस्मान की तलवार चमक उठी। 'खच्च'—और दासमय्या का सिर कट कर दूर जा गिरा। रक्त का फव्वारा छूट पड़ा! सड़क, वधिकों के वस्त्र, दरवाजे सब एक साथ लाल हो गये।

उसके दोनों हाथ—जिन्होंने बाल्यकाल में, लगातार पांच वर्ष तक भिक्षुक की झोली में स्नेह भरी भिक्षा डाली थी, अब भी उसी करीम-भिक्षुक के हाथ में पकड़े हुए थे।

विष्णु भगवन्त

—रियासत हैदराबाद के नन्दूर ग्राम में, श्री विष्णु भगवन्त का जन्म हुआ। नितान्त परोपकारी जीव थे। जन सेवा की इतनी लगन थी कि इसे पूर्ण करने के लिये विवाहित जीवन से पृथक् रहकर, आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया। प्रथम मई १६३६ को उस्मानियां अस्पताल में देहान्त हुआ।

स्वप्न

—तारा मण्डल पुण्यात्माओं के प्रकाश से चमकता है।

इतनी कहानियें और किसे याद होंगी—जितनी गोपाल की दादी-अम्मां को। वह पुराने जमाने की अशिक्षिता स्त्री थी परन्तु उसका मस्तिष्क कहानियों से भरा पड़ा था।

जब शाम हो जाती, अन्धकार के देव-शिशु पंख लगा कर इधर-उधर उड़ने लगते—बच्चे, खा पीकर दादी-अम्मां को घेर लेते और कहानी सुनाने का आग्रह करते। ऐसी शायद ही कोई रात जाती, जब दादी-अम्मां बच्चों के आग्रह पर कोई कहानी न सुनाती।

एक दिन। गरमियों की रात थी। मैं अपने मकान की खुली छत पर अकेला लेटा हुआ था। ऊपर, नीलाकाश में असंख्य

तारा-गण टिमटिमा रहे थे; शीतल पवन पंखा झल रहा था। प्रकृति नीरव, ध्यानमग्न खड़ी थी।

पास ही, दादी-अम्मां बच्चों को कहानी सुना रही थी। एक बालक बीच में ही पूछ बैठा—दादी, ये तारे कौन होते हैं?

"हमारी इस पृथ्वी पर जो पुण्यात्मायें दूसरों के लिये अपने प्राणों का विसर्जन करती हैं, वे आकाश में पहुंचकर तारा बन जाती हैं।"

"और वे चमकती क्यों हैं?" एक दूसरे बालक ने पूछा।

"उनका पुण्य, प्रकाश बनकर चमकता है"—दादी-अम्मां ने छूटते ही उत्तर दिया।

उत्तर सुन बच्चे चुप हो गये और आश्चर्य से तारक-खचित गगनमण्डल को देखने लगे। कितनी पुण्यात्मायें ऊपर चमक रही थीं!!

× × ×

दादी-अम्मां की कहानी सुनते-सुनते, न जाने कब, मुझे नींद आ गई और थोड़ी ही देर में मैं स्वप्नों के मधुर साम्राज्य में उड़ने लगा।

मुझे ऐसा जान पड़ा, मैं किसी विशाल तलघर में भटक रहा हूँ। तीव्र दुर्गन्ध कहीं से आ रही है। उससे बचने के लिये, मैं कभी इधर कभी उधर, सुरक्षित जगह खोजता फिर रहा हूँ। सैंकड़ों छोटी-बड़ी कोठरियें चारों तरफ बनी हुई हैं।

मगर, जिसमें भी मैं जाता हूँ, कोई न कोई आदमी बैठा दीखता है। अन्त में एक खाली कोठरी मुझे दीखी और मैं उसी में जा घुसा। परन्तु यह क्या ? थोड़ी ही देर में, न जाने कहां से—एक पलङ्ग वहां आकर बिछ गया, जिस पर श्वेत चादर ओढ़े कोई लेटा पड़ा था। कौन था - पता नहीं। उसका चेहरा सूखकर कांटा हो गया था, गाल भीतर धँस गये थे, कपाल के नीचे बड़ी बड़ी आंखें, गहरे गढों में चमक रही थीं। जान पड़ता, उसमें जीवन नहीं है, शव मात्र है।·········परन्तु, अकस्मात्, उसकी आंखें हिलीं, ओठ फड़के और उसने सङ्केत द्वारा मुझे अपने निकट बुलाया।

"मुझे पहचाना नहीं, मित्र ?"—मुसकराकर कंकाल ने कहा।

अकस्मात् रोगी की मुखाकृति बदल गई। ओहो, यह तो सचमुच मेरा मित्र तन्दूरकर है !!

मेरे मुख से चीख निकल गई, जब वह हंसने लगा। कितना विकट हास्य था······वह······वह···श्मशान हास्य।

हां, वह मेरा मित्र था। उन दिनों उसकी आयु लगभग तीस वर्ष की थी। नितान्त परोपकारी जीव था, वह। विशुद्ध सदाचारी। परम जन-सेवक। इसी जन सेवा-धर्म को निभाने के लिये ही उसने जगत के हास-विलास से पृथक् रह कर आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था। आजकल वह हैदराबाद

सेन्ट्रल जेल में रोग ग्रस्त पड़ा था और उसके विशाल मित्रवर्ग में, उसके जीवन के लिये परम चिन्ता प्रकट की जा रही थी।

"तुम यहां कैसे, तन्दूरकर ?"—मैंने साहस कर पूछ ही तो लिया।

उसी समय पलंग हिला और कमरे में से निकल आकाश की ओर उड़ने लगा।

"विष्णु ! अरे, विष्णु !!"—मैं उसके पीछे भागा।

"उधर ! उस पार !!"—आकाश में से एक आवाज़ आई; शायद मेरे प्रश्न का उत्तर था······और पलंग अदृश्य हो गया।

थोड़ी ही देर बाद ऐसा जान पड़ा, पास के ही कमरे में कोई विलख विलख कर रो रहा है, दरवाजे में सिर धुन रहा है, धक्के दे रहा है।

हड़बड़ाकर मेरी नींद उचट गई। सचमुच लालचन्द 'हाकर' जोर जोर से चिल्ला रहा था—"यह लेना अखबार, बाबू जी······अखबार।"

मैंने आंखें मलीं और उठकर अखबार ले लिया। पहले ही पृष्ठ पर लिखा था—

"उस्मानियां अस्पताल में, प्रथम मई की रात को, हृदय गति बन्द हो जाने से विष्णु भगवन्त तन्दूरकर का देहांत हो गया।"

स्वप्न किस तरह सत्य हुआ, कितना आश्चर्य था !! मुझे दादी अम्मां की बात याद हो आई। कल सायंकाल उसने कहा था—जो पुण्यात्मायें दूसरों के लिये अपने प्राणों का विसर्जन करती हैं, तारा बन जाती हैं। तो क्या, सचमुच आज आकाश में एक और नये तारे की वृद्धि हुई होगी ?

सन्त महादेव

—निजाम स्टेट में अकोलगां सय्यदां नाम की छोटी सी जागीर है, सन्त महादेव वहीं रहते थे। उन्हें जन सेवा और प्रचार की बहुत धुन थी। यही जन सेवा कार्य एक दिन उनका शत्रु बन गया। उन पर कई बार आक्रमण हुए। परन्तु घायल होकर भी वे अपने पराक्रम से बचते रहे। अन्त में, १४ जुलाई सन् १९३८ को एक मदान्ध मुस्लिम ने पीछे से आकर, उनकी पीठ में छुरा भोंक दिया और सन्त महादेव २५ वर्ष की आयु में ही दिवंगत हुए।

प्रतिशोध

—दूसरे को चोट पहुँचाना सुगम है मगर उसे स्वयं सहन करना अत्यन्त कठिन।

संसार में बुराई से घृणा करने वालों की अपेक्षा, अच्छाई से द्वेष रखने वालों की संख्या बहुत अधिक है। दुनियां दुर्गुणों को सह लेती है, मगर गुणों को नहीं सह सकती।

अकोलगां सय्यदां में यही हुआ। वहां का प्रसिद्ध सन्त महादेव अपनी सरलता और अच्छाइयों के कारण ही अनेक मनचलों का क्रोध-पात्र बना हुआ था। हां, उसे एक शौक़ अवश्य था··· यही व्याख्यान देने का। अब, इसे चाहे उसका अपराध कहिये या गुण—मगर वह व्याख्यान अवश्य देता। जब वह कहता—दुनियां के सभी धर्म श्रेष्ठ हैं—तो दीवाने कहते, यह मज़हब

पाक की तौहीन कर रहा है। जब वह समझाता—हिन्दू-मुसलमान, सब एक ही माता की सन्तान हैं, भाई भाई हैं; अधिकारी लोग कहते, वह राजद्रोह फैलाता है। हिन्दु-मुसलमानों में बिना भेद भाव किये, जब वह सभी के साथ एक सरीखा व्यवहार करता, सम्प्रदायवादी कहते—वह जाति द्रोही है। बस्ती में उसके भक्त तो बहुत थे, परन्तु शत्रु भी कम न थे।

जैसा प्रायः सर्वत्र देखा जाता है—उसके भक्तों की भीड़ में अधिकतम संख्या कायरों और निर्बलों की ही थी; इसलिये उन भीरुओं से कुछ करते धरते न बना और महादेव को अपनी अच्छाइयों का दण्ड भोगना ही पड़ा। प्रसिद्ध बदमाश सैयद अली ने एक दिन पीछे से आकर, उसकी पीठ में छुरा भोंक दिया और सन्त महादेव संसार से कूच कर गया।

×

महादेव की हत्या करने के बाद सैयद अली कई मास तक इधर उधर भटकता फिरा। कभी खण्डवा और कभी चालीस गांव। अब एक मास से वह देवलपुर की जागीर में अड्डा जमाये पड़ा है, और अपने गिरोह के साथ जहां तहां उपद्रव मचाता फिर रहा है। व्यापारी, विद्यार्थी, किसान—सभी भयभीत हैं। स्वयं नवाब दौलतखां की चिन्ता बढ़ रही है और वे जी जान से उसे गिरफ्तार करने में लगे हुए हैं।

कुछ दिन तक तो सैयद अली के गिरोह ने जागीर में अच्छा आतंक जमाया, खूब लूट पाट मचाई, मगर अन्त में भाग्य चक्र पलटा और दो ही मास बाद उसकी चिन्तायें बढ़ने लगीं। एक अद्भुत घटना ने तो उसे इतना भयभीत और चिन्तित कर दिया कि उसका जागीर से बचकर भाग निकलना भी असम्भव हो गया।

अपने साथियों समेत वह जिस वन में रहता था, वह इतना घना था कि सर्व साधारण का वहां तक पहुंच सकना नितान्त असम्भव था। दिन में भी सिंह भगवान के दर्शन हो जाते। परन्तु, तब भी हर दूसरे-तीसरे दिन उसका एक साथी ग़ायब हो जाता और बहुत खोजने पर भी उसका पता न चलता।

एक दिन अपनी गुप्त गुफा के बाहर, जब वह इसी चिन्ता में बैठा हुआ था, उसका एक साथी—जो कई दिन से ग़ायब था—उसे अचानक अपनी तरफ आता दिखाई दिया।

सैयद अली ने आगे बढ़ उसका स्वागत किया। कुशल-प्रश्नों के बाद आगन्तुक ने अपने ग़ायब होने की ऐसी विचित्र कथा सुनाई कि सैयद अली भी दंग रह गया।

"तो तुम्हारा मतलब है, खुद नवाब का इसमें हाथ है?"—अन्त में उसने पूछा।

"बेशक"

"लेकिन मुझे तो विश्वास नहीं आता कि एक सच्चा मुसलमान, दूसरे मुसलमान के साथ इस तरह का बर्ताव क्योंकर कर सकता है ?"

आगन्तुक ने विचित्र ढङ्ग से कन्धे हिलाये और कुछ उत्तर न दिया।

सैयद अली थोड़ी देर तक चुप बैठा रहा। फिर एकाएक उसकी भौंहें तन गईं और एक भीषण धारणा उसकी आंखों में बरसने लगी।

"यहां से चार मील से अधिक तो न होगा, महल ?"—उसने पूछा।

"ठीक, साढ़े तीन मील"

"तुमने अन्दर से तो उसे देखा ही है ?"

"खूब अच्छी तरह"

"महल पर कितने सिपाहियों का पहरा रहता है ?"

"सिर्फ चार।"

"और, नवाब किस कमरे में सोते हैं ?"

"नदी-तरफ वाले पांचवे कमरे में।"

"अच्छा, आज रात को मेरे साथ चलने के लिये तय्यार रहो"—कहकर सैयद अली उठा और गुफा के भीतर जाकर लेट गया।

× × ×

रात होते ही वह वेष बदल नबाब के महल की ओर चला। उसके बीस साथी भी उसके साथ थे। महल के बाहर पहुँच चुपचाप चारों पहरेदार गिरफ्तार कर लिये गये और अपने चुने हुए छः साथियों समेत वह गुप्त मार्ग से महल में प्रविष्ट हुआ। शेष, चौदह साथी बाहर ही छोड़ दिये गये, उन्हें आवश्यकता पड़ने पर बुलाया जा सकेगा। इन छः साथियों को भी आवश्यक नाकों पर नियुक्त कर वह स्वयं अकेला ही—केवल पथदर्शक साथी के साथ, दबे पांव नवाब के शयन कक्ष की ओर बढ़ा। मगर पथदर्शक ग़ायब था, न जाने कहां? उसकी विशेष चिन्ता न कर वह अकेला ही शयनकक्ष में जा पहुँचा।

देखा, कमरा खाली पड़ा है। एक पलंग और चार पांच कुर्सियों के अतिरिक्त कोई विशेष सामान उसमें नहीं है। वह चुपचाप पलंग के नीचे जा छुपा और नवाब की प्रतीक्षा करने लगा।

उसी समय कमरे का द्वार खुला और स्वयं नवाब दौलतखां ने प्रवेश किया। सैयद अली छुरा निकाल सावधान हो गया।

मगर, यह क्या? अकस्मात् एक कठोर हाथ उसकी तरफ लपका और बिजली की तरह तड़प उसने उसकी गर्दन दबोच ली।

इतने से ही सैयद अली समझ गया, अपने शक्तिशाली शत्रु के सामने वह कितना निर्बल है! उसने मुकाबला करने या

छूटने की चेष्टा छोड़ दी और चुपचाप अपनी स्वाधीनता नवाब के हाथों में सौंप दी।

"मैं देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा था। आज तुम्हें अपने सामने देख मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है।"—नवाब ने मुसकराते हुए कहा।

"मगर एक मुसलमान होकर—"

"तुमने एक बेगुनाह हिन्दू का खून किया, समझते होगे, इससे शायद तुम्हें बहिश्त मिलेगा? क्यों, न?"—नवाब ने बीच में ही बात काट कर कहा।

"वह मज़हब पाक़ की तौहीन करता था।" —सैयद अली ने अपनी निर्दोषिता प्रमाणित करते हुए कहा।

"इसलिये तुमने उसका खून ही कर दिया!—खूब!!...... और, तुमने यह ज़रा भी नहीं सोचा कि उसकी मौत से उसके बूढ़े मां-बाप और मासूम बहन को कितना धक्का लगेगा? जानते हो, घर भर में वही एक उनका सहारा था; वही उनका सर्वस्व। उसे छीनकर तुमने सचमुच उन्हें दर दर का भिखारी बना दिया; अनाथ-आश्रय हीन।"

नवाब का स्वर ऊँचा हो गया—

"एक बनावटी, निकम्मे जोश में आकर तुमने पांच प्राणियों का जीवन मिट्टी में मिला दिया, धूल में—और फिर भी उम्मीद

करते हो तुम्हें बहिश्त मिलेगा ? बदमाश, दोज़ख के कुत्त; ठहर !"—नवाब के नेत्रों से चिनगारियां बरसने लगीं।

इतने में ही, अकस्मात् कुछ व्यक्ति कमरे में घुस आये और बिना कुछ कहे सुने ही, एकाएक—सैयदअली पर लाठियां बरसाने लगे। अचानक मार खाकर वह चिल्ला उठा, तड़प उठा और देखते ही देखते छट पटाकर ज़मीन पर गिर पड़ा।

मगर नवाब ने उसे फिर गरदन से पकड़ कर खड़ा कर दिया।

"पुरानी बातों की याद दिलाने के लिये ही यह सब कुछ हो रहा है। तुम्हें क्या याद नहीं, आज से पांच साल पहले तुमने ठीक इसी तरह महादेव पर अचानक हमला किया था; पीछे से आकर······और उसका सिर इसी तरह फोड़ दिया था ? उसकी दर्दनाक हालत देख, उसके मां-बाप भी इसी तरह रोये थे; जैसे अब तुम्हारे रो रहे हैं ? —वह देखो न, सामने।"

सैयदअली चौंक उठा। सचमुच उसके मां-बाप उसके सामने खड़े थे और उसकी दुर्दशा देख रो रहे थे।

"याद है—बजरङ्ग गढ़ में तुम लोगों ने उसे, इस तरह··· ज़ख्मी किया था······इस तरह······इस तरह"—एक के बाद एक, तीन छुरे उसके दायें-बायें कन्धों में आकर गड़ गये और उसकी पीठ में से खून का फव्वारा छूट पड़ा; टांगें लड़खड़ाईं और वह ज़मीन पर गिर पड़ा।

नवाब हँसने लगा।

"ठीक इसी तरह तुमने महादेव पर हमला किया था—याद है? अब शायद तुम समझ गये होगे, दूसरे को चोट पहुंचाना कितना आसान है और खुद उसे बर्दाश्त करना कितना मुश्किल? अब जाओ, उस पाक़ परवरदिगार से दुआ मांगो, वह क़यामत के दिन तुम्हारे गुनाहों को माफ करे।"

सङ्केत हुआ और दो आदमी सैयदअली के घायल शरीर को महल के बाहर रख आये। उसके साथियों का क्या हुआ, यह आज तक भी किसी को पता न चला।

भीम राव

कई वर्ष हुए हैदराबाद के हुपला ग्राम में श्री भीम राव पटेल ने अपने मित्र मानिक राव की बहिन को शुद्ध किया था, जिसे कतिपय मुसलमानों ने—उसकी इच्छा के विरुद्ध, इस्लाम मत में दीक्षित कर लिया था। इस से कुपित हो—मुसलमानों की एक विशाल भीड़ ने—एक दिन श्री भीम राव के मकान पर आक्रमण कर दिया। भीम राव ने वीरता पूर्वक शत्रुओं का सामना किया। इस पर उन्हें गोली से उड़ा दिया गया। उनकी चाची को भी गोली का निशाना बनाया गया। घर को आग लगा दी गई और श्री भीम राव के हाथ-पांव काट दिये गए।

भीम राव

—अस्तंगत सूर्य की तरह उसका जीवन-सूर्य भी अस्त हो चुका था।

"किधर—जा रही हो, बेटी?" —कहते हुए, एक अधेड़ उम्र महिला ने सुहासिनी के कन्धे पर हाथ रक्खा।

"अस्पताल जा रही हूँ"—सुहासिनी बोली।

"कौन—बीमार है?"

"कई दिन से मुझे ज्वर आ रहा था, सोचा—दवा ले आऊं"

"बस, तुम हिन्दुओं में यही तो बुरा रिवाज है।" महिला बोली। "—सयानी लड़कियों को भी इस तरह अकेली भेज देते हैं।—बड़ा खराब जमाना है, बेटी।"

मगर सुहासिनी 'खराब जमाने' का अभिप्राय न समझी, इस लिए चुप रही।

"ना बाबा, तुम हिन्दू औरतों को तो बड़ा ढीठ होता है—सचमुच। मुझे तो इस उम्र में भी, इतनी दूर—उस अस्पताल तक, अकेली जाते डर लगता है। खुदा ही बचाये"—कहकर महिला कुछ क्षण के लिये चुप हो गई और हांपने लगी।—"मुझे दम का आरज़ा है, बेटी! ज़रा देर में ही हांपनी चढ़ आती है। बस, कुछ न पूछो, बड़ी बुरी बीमारी है।"—फिर कुछ ठहर कर बोली—"अब मैं तो बूढ़ी हुई, बेटी; तुम्हारे उस अस्पताल तक जाने का, मुझमें दम भी कहां है? मुझे तो जब कभी जरूरत होती है, इसी पास वाले डाक्टर से दवा ले आती हूँ। बड़ा नेक आदमी है, बेचारा। औरतों को तो मुफ्त ही दवा देता है।"

इधर बस्ती में भी कोई डाक्टर रहता है, सुहासिनी को यह बिलकुल पता न था। महिला की बात सुन उसका कौतूहल बढ़ गया।—अब, सरकारी अस्पताल उसे दूर···बहुत दूर··· प्रतीत होने लगा।—वहां तक जाते हुए टांगें थक जायंगी—उसका मन बोला। उसे अकेली जाते देख, लोग क्या कहेंगे? —हृदय ने आशङ्का की। फिर; क्या जाने डाक्टर मिले या न मिले; अगर कहीं बाहर गया हुआ हो, तब?—अनेक असम्भव कल्पनाओं ने उसके हृदय को घेर लिया। अन्त में उसका आलस्य पूछ ही बैठा—कहां रहते हैं, डाक्टर?

"वो कौन, उस सामने वाले बंगले में"—लापरवाही से महिला बोली।

"मगर......मगर मैं अपने भाई से पूछ कर नहीं आई हूँ; कहीं वे नाराज़ न हों।"

"अब यह सब तो तुम्हीं जानो, बेटी। वैसे रास्ता तीन मिनिट से ज्यादा का नहीं है, दो ही मिनिट में दवा मिल जायगी—और बस अपने घर का रास्ता पकड़ना। वहां देर का क्या काम?"

"तुम मुझे उनका घर बता सकोगी, अम्मां?"

"अच्छा आओ, बाबा—उनका घर भी बता दूँ, तुम्हें।—जो बोले सो कुण्डा खोले। है न मसल........। मगर डाक्टर सचमुच बड़ा ला जवाब है। तीर की तरह दवा लगती है।"

सुहासिनी महिला के साथ हो ली। थोड़ी ही देर में वह एक सुन्दर मकान के सामने खड़ी थी। सुन्दर इसलिये—चूंकि निकटवर्ती खपरैलवाले मकानों की अपेक्षा वह कुछ न कुछ साफ और सुन्दर अवश्य था। मगर आदमी उसमें दो ही चार दीख रहे थे। शेष सब सन्नाटा था।

"मैं ज़रा देख तो आऊं, डाक्टर साहब क्या कर रहे हैं? तब तक इधर ही ठहरना बेटी; अच्छा?"—कहकर महिला ने एकबार सुहासिनी के सुन्दर-गौर-मुख की तरफ देखा और फिर कदम बढ़ाकर मकान के भीतर चली गई।

मकान की शून्यता देख सुहासिनी घबरा उठी। उसका हृदय धड़कने लगा।—कैसा अस्पताल है यह?—वह सोचने

लगी। रोगी तो यहां एक भी नही दीखता । उसने किस अपरिचिता के कहने पर विश्वास किया ? इस अज्ञात-स्थान में चली आई ! कोई देखले तो क्या कहे—चलूं, लौट चलूं !

वह लौटना ही चाहती थी कि वही अधेड़-महिला मुसकराती हुई मकान से बाहर निकली और बड़े स्नेह से उसका हाथ पकड़ कर बोली—

"घबड़ा गईं ! इतनी ही देर में·······पगली कहीं की"—कहकर एक हल्का सा चपत उसने भयभीत सुहासिनी के गाल पर जमा दिया।—"मैंने डाक्टर साहब से तुम्हारी बाबत सब समझा दिया है, आओ, अब जल्दी से दवा ले लो और अपने घर जाओ·····दोपहर होने आई।"

सुहासिनी हिचक रही थी। परन्तु महिला—रोगिणी महिला का हाथ कठोर हो रहा था। वह मुसकराती जाती, मधु बरसाती जाती और सुहासिनी को सहारा देती हुई, खेंचती सी हुई—उधर ले चली जहां डाक्टर साहब अधीर हृदय से उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

देखा-सामने, कमरे में फर्श बिछा है और उस पर केवल एक, अकेला आदमी बैठा हुआ है। शायद यही डाक्टर था।

"घबराओ नहीं, चली आओ·····चली आओ"—उसने मुसकराते हुए कहा और सुहासिनी चीख उठी । तत्काल दो

बलिष्ठ बाहों ने उसके गिरते हुए मूर्छित शरीर को धीरे से संभाल लिया।

× × ×

विपुला में अधिकांश बस्ती किसानों की ही है। बड़े सबेरे ही वे हल संभाल खेतों में चले जाते हैं। पीछे या तो बालक-वृद्ध या स्त्रियें घरों पर रह जाती हैं। मध्याह्न में गृह वधुएं भी, घर वालों के लिये भोजन-पानी ले खेतों पर जा पहुंचती हैं। तब गांव में और भी शून्यता छा जाती है।

मगर, सायंकाल होते ही—जब किसान अपने बैल हांकते हुए - गीत गाते हुए, गांव की ओर लौटते हैं, थनों में अमृत भरे हुए, बछड़ों के प्रेम में विह्वल गायें; रंभाती हुई बन से लौटती हैं, बछड़े मां-मां पुकारने लगते हैं, ग्राम्य बालक कोलाहल कर उठते हैं, बटलोइयों में गिरती हुई दुग्ध-धारायें स्वर्गीय सुधा का दिव्य संदेश सुनाने लगती हैं—ग्राम में एकबार फिर जीवन लौट आता है। तभी किसान लोग भोजन पाकर चौपाल में या पीपल वृक्ष के चबूतरे पर एकत्रित होते हैं—और ग्राम की समस्याओं पर विचार करते हैं। इससे पूर्व उनके पास अवकाश ही नहीं होता।

गांव में कई दिन से मानिक राव की बहन के अचानक लापता हो जाने की चर्चा फैली हुई है। तरह तरह की बातें उड़ रही हैं। देव राव की बूढ़ी मां ने उसे भूत की पीठ पर बैठ

कर आकाश में उड़ते देखा था। तालाब वाला मगरमच्छ, पलटी बाई की आंखों के सामने, सुहासिनी की टांग खेंच जल में जा डूबा था। गङ्गाबाई ने, उसे बुरक़ा ओढ़े हुए, दो आदमियों के साथ दूसरे गांव की ओर जाते देखा था। —ऐसे कितने ही संवाद गांव में उड़ रहे हैं। बेचारा मानिक राव लज्जित है और चिन्तित।

मगर अन्त में, एक मास बाद, सुहासिनी का पता चल गया। भीम राव गांव का मुखिया है—और मानिक राव का मित्र। सुहासिनी के गुम होने की चिन्ता जितनी उसे थी—उतनी शायद मानिक राव को भी न होगी। वह कई दिन तक, अपना काम-धन्धा छोड़, भेस बदले हुए—गांव की गलियों में भटकता फिरा; निकटवर्ती गांवों में खोज-तलाश लगाता रहा। अन्त में उसका प्रयत्न सफल हुआ और उसने सुहासिनी को ढूँढ ही निकाला।

बहलोल खां पठान के मकान के पास से गुजरते हुए, उस दिन उसे एक लड़की के रोने का कण्ठ-स्वर सुनाई दिया। इस स्वर को वह खूब पहचानता था—खूब अच्छी तरह। तत्काल वह पठान के मकान में जा घुसा और बीसियों लाठियों के बीच में से सुहासिनी को निकाल लाया।

इस पर, पुरोहित जो भला क्यों, पीछे रहते? उन्होंने तुरन्त गरुड़-शास्त्र की दुहाई देकर सिद्ध किया कि म्लेच्छ के घर में

रही हुई स्त्री, पतिता हो जाती है—धर्म-भ्रष्टा। उसे फिर जाति में नहीं मिलाया जा सकता। बड़ी बूढ़ी स्त्रियों का भी यही मन्तव्य था।

परन्तु ग्राम के नवयुबक भीम राव के साथ थे। तत्काल सुहासिनी को शुद्ध किया गया और सब से पहले भीम राव ने ही उसके हाथ का भोजन ग्रहण किया।—"यद्यदाचरति श्रेष्ठ स्तत्त-देवेतरो जनः" —अनुकरण में सारे ग्राम ने सुहासिनी के हाथ का भोजन पाया और एक स्वर से बिरादरी में सम्मिलित किया।

संस्कार के पश्चात्, पुरोहित जी के घर पर भी, दस सेर आटा, दो सेर दाल, दो सेर चावल, सेर भर घी और एक रुपया रूपराज की दक्षिणा भेज दी गई। इस भक्ति भाव से सन्तुष्ट हो कर उन्होंने भी शुद्धि कार्य को शास्त्र-सम्मत स्वीकार किया।

मगर, वहलोल खां के सुख-स्वप्नों का महल गिर पड़ा। उसकी आशायें धूल में मिल गईं। डाक्टर का नाटक रचकर, बड़े प्रयत्न से, उसने जिस प्रसाद को पाया था; उसके अकस्मात् छिन जाने से, उसे निराशा और दुःख तो हुआ ही—क्रोध भी कम न आया।

× × ×

सायंकाल का समय था। अभी तक किसान खेतों से लौटे न थे। गांव के मन्दिर की शङ्खध्वनि दूर तक सुनाई दे रही थी।

यज्ञ-धूम आकाश में उठ रहा था। दूर, सरसों के पीले खेत सायङ्कालीन-पवन के झकोरों में झूम रहे थे। श्यामा-सान्ध्यवेला, ग्राम पर आशीर्वाद बरसा रही थी।

भीम राव के घर में, स्त्रियें—सायङ्कालीन भोजन की तय्यारी कर रही थीं। बच्चे आङ्गन में खेल रहे थे।

अकस्मात्, मकान के आङ्गन में दस बीस भारी पत्थर एक साथ आकर गिरे और बच्चे चीख उठे। उनकी मां रसोई में थी; शोर सुन बाहर आई। आते ही एक बड़े पत्थर ने उसका स्वागत किया। परन्तु वीर-पत्नी थी: घबराई नहीं। दौड़कर उसने दरवाजे बन्द कर दिये और भीतर से कुण्डी चढ़ा दी।

उसी समय—बाहर, भेड़िये सरीखी गुर्राहट हुई और एक कठोर आवाज दूर तक गूँज गई—दरवाज़ा खोलो, हरामजादो; वर्ना तोड़ दिया जायगा!!

स्त्रियें भयभीत कबूतर की तरह कांपने लगीं। भीम राव की पत्नी ने दरवाजे में से झांक कर देखा—डेढ दो सौ हमलावर, हाथों में घातक-शस्त्र पकड़े—मकान घेरे खड़े हैं!!

"खोलो! दोज़ख के कुत्तो, खोलो!! मैं—वहलोल खां तुम्हें हुक्म देता हूँ"—फिर वही आवाज़ आई और एक साथ पचासों लाठियें, पत्थर, ईंटें—दरवाजे पर बरसने लगीं।

स्वामि-भक्त सेवक की तरह, काफी देर तक, उन दोनों दरवाजों ने शत्रु-प्रहारों को अपनी छाती पर झेला; पर अन्त में

वे खण्ड-खण्ड होकर धरती पर गिर पड़े और हमलावरों का मार्ग निष्कण्टक हो गया।

बहलोल खां आगे-आगे—भीड़ पीछे-पीछे; मकान में घुस आई। स्त्रियें कांपने लगीं। भीमराव की पत्नी, अपने मूर्छित बच्चे को गोद में उठाये, एक तरफ खड़ी थी। बहलोल खां तलवार लिये उधर ही बढ़ा।

हठात्, छत पर से कूदकर किसी ने उसका मार्ग रोक लिया। बहलोल खां ने देखा, स्वयं भीम राव नङ्गी तलवार लिये उसके सामने खड़ा है !!

शेर की तरह पठान उस पर झपटा; मगर अगले ही क्षण भीम राव की तलवार ने उसका सिर भुट्टे की तरह, धड़ से जुदा कर दिया—खाल खींच लो; खून पी लो—कहती हुई भीड़ आगे बढ़ी, गरजती हुई, दांत पीसती हुई !!—हठात् किसी की बन्दूक बोली······अरड़ धम······और भीम राव जमीन पर छटपटा रहा था !

उसकी चाची दौड़ी; भतीजे को बचाने के लिये !! मगर बन्दूक फिर गरजी—अरड़ धम······और अगले ही क्षण बूढ़ी की लाश भी ज़मीन पर तड़पने लगी !!

बहलोल के भाई ने तलवार निकाल मृत भीम राव के हाथ पांव काट लिये और मकान को आग लगा दी।"

इस तरह प्रतिहिंसा पूर्ण हुई; और हमलावर भाग गये।

शोकाकुल ग्रामवासियों ने देखा—वीर की भांति भीम राव पृथ्वी पर पड़ा है। अस्तंगत सूर्य की तरह उसका जीवन-सूर्य भी अस्त हो चुका है !!

कल्याणानन्द

—कल्याणानन्द संन्यासी मुजफ्फर नगर के निवासी थे। आयु पचहत्तर साल.....'वृद्ध'.....'अत्यन्त वृद्ध। गुलबर्गा में वे गिरफ्तार हुए और सम्भवतः आठ जुलाई १९३९ को उनका स्वर्गवास हुआ। इतने वृद्ध शरीर में इतनी सबल आत्मा निवास कर रही है—यही सबको आश्चर्य था।



। स्वामी कल्याणानन्द जी ग्राम किर्नोली, जिला मुजफ्फरनगर
(संयुक्तप्रान्त) आप हैदराबाद सत्याग्रह में
ता० ८-७-३९ को गुलबर्गा जेल में
शहीद हुए ।

अन्तिम-चिन्ह

—"देह क्षणभङ्गुर है, आत्मा अमर; इसे शस्त्र नहीं काट सकते—आग नहीं जला सकती।"

रानीगढ़ के बाहर—ग़रीबों की बस्ती में कादिर हुसैन का घर है। उसका इकलौता पुत्र बशीर अहमद, दक्खिन की किसी रियासत में नौकरी करता है। ब्याह-त्यौहारों की छुट्टियों में जब कभी घर आता रहता है।

कादिर हुसैन की आयु सत्तर वर्ष से कम न होगी। अपनी सचाई, धर्मवृत्ति और शराफ़त के लिये वह बस्ती भर में प्रसिद्ध है। वह प्रतिदिन कुरान का पाठ करता। पांच बार नमाज़ पढ़ता और अवकाश-वेला में खुदा के पवित्र नाम की माला फेरा करता।

लेकिन, ऐसा उदार-हृदय पुरुष भी सर्वप्रिय न बन सका। उसके अपने ही सहधर्मी उसे काफिर समझते।

भारत के अधिकांश मुसल्मानों की तरह कादिर के पूर्वज भी हिन्दू थे। उसके दादा किसी कुचक्र में फंसकर मुसल्मान बनने के लिये बाधित हुए थे। तभी से उनके वंशज अपने आप को मुसल्मान मानते आ रहे हैं और बड़ी श्रद्धा से इस्लामी रीति-रिवाजों का पालन करते हैं।

जिस मकान में कादिर हुसैन रहता है—वह भी उसके हिन्दू पूर्वजों का है। दो सौ वर्ष बीत जाने पर भी, वह आजतक वैसे ही अटल, अचल खड़ा हुआ है। उसकी सुन्दर रचना आज भी बता रही है—उसके बनवाने में कितना धन, कितना समय और कितनी बुद्धि व्यय की गई होगी। पत्थर की दीवारों पर, पचासों बनवासी पशु-पक्षियों के चित्र, पत्थर काट कर बनाये गये थे; वे सब अबतक मौजूद हैं। प्राचीन हिन्दू प्रथा के अनुसार प्रत्येक कमरे में- कहीं ब्रह्मा, कहीं विष्णु और कहीं शङ्कर की भव्य मूर्तियें भी पत्थरों पर खुदवाई गईं थीं। परन्तु अब उनमें से केवल एक ही बची है। शेष, कादिर के पुत्र बशीर ने भग्न करदी हैं।

वृद्ध कादिर, स्वभाव से ही उदार पुरुष है। उसकी जबतक चली—अपने पूर्वजों के इन दुर्लभ स्मृति-चिन्हों को—वह सुरक्षित बनाये रहा। वे उसके अपने न सही; उसके पूर्वजों के

इष्टदेव तो थे ही। तिस पर, प्राच्य शिल्पकला के उज्ज्वल उदाहरण थे। और; घर की शोभा जो थी, वह अलग। यही सब सोचकर, उसने उन प्रस्तर-मूर्तियों की रक्षा की थी। उसकी दृष्टि में—वे उसके दिवंगत पूर्वजों की वसीयतें थीं; और अमानतें।

परन्तु बशीर अहमद नई चांदी का सिक्का है; नई रोशनी का मुसल्मान। उसके इस्लाम में, दुनियां का प्रत्येक गैर-मुस्लिम काफिर समझा जाता है, और इसीलिये घृणा का पात्र है। वह भारतीय जलवायु में पलकर भी अरब के गीत गाता है, कला तथा कोमल भावनाओं का शत्रु है—और पाकिस्तान के असंभव स्वप्न देखता है। हिन्दुत्व का सुन्दर से सुन्दर चिन्ह भी उसे अभीष्ट नहीं है। तब फिर उसके अपने ही घर में, घर में ऐसा कोई भी चिन्ह, कैसे सुरक्षित रह सकता है?

इसीलिये वह जब कभी घर आता, इन प्रस्तर-मूर्तियों में से एकाध को अवश्य नष्ट कर जाता। छैनी पकड़कर जब वह मूर्ति के कलेवर पर बजाने लगता—बूढ़े कादिर के हृदय पर छुरी सी चल जाती। उसे ऐसा जान पड़ता, छैनी की प्रत्येक चोट मूर्ति पर न पड़ उसके अपने दिल, अपने सीने पर—पड़ रही है। अपने यौवन में वह भी पहलवान था। उन दिनों यदि बशीर उन मूर्तियों का यों संहार करता, निश्चय ही वह उसे कठोर ताड़ना दिये बिना न रहता। मगर अब, जब—जरावस्था

उसका समस्त बल, सम्पूर्ण शक्ति छीन चुकी थी; मन्त्रबद्ध-सर्प की तरह वह बल खाकर रह जाता। भग्न हृदय। नीरव!

× × ×

"मामा आये"—कहती हुई बालिका नसीम घर से निकल कर भागी और बशीर की टांगों में लिपट गई। बड़े स्नेह से उस दीर्घकाय युवक ने बालिका को गोदी में उठा लिया और घर पहुंच बूढ़े बाप और जेष्ठा भगिनी नसीवन को प्रणाम किया।

इतने दिन बाद, पुत्र से मिलकर वृद्ध कादिर हुसैन के नेत्रों में आंसू निकल आये; स्नेह उमड़ पड़ा। खाट से उठ उसने बशीर को छाती से लगा लिया।

परन्तु जैसे ही, वह फिर अपनी खाट पर बैठने लगा, उसका मुख अकस्मात् विवर्ण हो गया: आंसू सूख गये। बशीर और नसीवन—दोनों ने—पिता के इस आकस्मिक परिवर्तन को देखा। परन्तु वे इसका कारण न समझ सके।

कुछ देर ठहर नसीवन भाई के लिये भोजन तय्यार करने चली गई और बशीर नहाने-धोने के लिये उठ गया।

अब कादिर अकेला था। यहां इस एकान्त मौनकक्ष में उसकी दुश्चिन्तायें और भी तीव्र हो उठीं। चार वर्ष के दीर्घकाल पश्चात् पुत्र घर पर आया है। वही पुत्र—स्वप्न में कितनी ही बार जिसका सुन्दर मुख उसने देखा है; वही सन्तान····वंश वृक्ष का वही अन्तिम चिन्ह—जो उसके बुढ़ापे का अन्तिम

सहारा है। यह सोचकर कितना प्रसन्न था, आज वह! परन्तु वही पुत्र—उस अन्तिम प्रस्तर मूर्ति को भी, पवित्र धरोहर की भांति जिसे वह अबतक सुरक्षित रखता आ रहा है; पूर्वजों की काव्य कला के उस अन्तिम चिन्ह को, प्राच्य संस्कृति की कितनी ही दुर्लभ भावनायें जिसमें निहित हैं—इस बार भग्न कर देगा; यह सोचकर कितना दुखी था आज वह······कितना चिन्तित!! क्या सच ही वह उसे भग्न कर देगा? यथार्थ ही एक अन्तिम चिन्ह, दूसरे अन्तिम चिन्ह को खा जायगा?—रह रह कर उसे यही चिन्ता सता रही थी।

× × ×

रात का समय था। सर्दियों के दिन। प्रधान कमरे में चार खाटें बिछी थीं। सायंकाल का भोजन पाकर कादिर हुसैन और उसका छोटा सा परिवार—याने, बशीर, नसीबन और बालिका नसीम—बैठे हुए वार्ता विनोद कर रहे थे। एक तरफ आले में चौदह नम्बर का पुराना कैरोसीन-लैम्प जल रहा था। हेमन्त की ठंडी हवायें सन-सन करती बह रही थीं। आकाश में बादल छाये थे, रह रह कर घटायें गरज रही थीं। सब लोग रजाइयें ओढ़े—लिपटे हुए बैठे थे।

बशीर दक्षिण देश की विचित्र कहानियें सुना रहा था और नसीबन और नसीम बड़ी दिलचस्पी से उसकी मनोरंजक बातें सुन रहे थे। यूं, कहने को तो कादिर भी बशीर की ही तरफ

देख रहा था—और ऐसा जान पड़ता वह भी उसकी बातों में दिलचस्पी ले रहा है—परन्तु यथार्थ में उसका ध्यान किसी और ही तरफ लगा था।

लैम्प के तेज प्रकाश में कमरे का कोना कोना जगमगा रहा था। एक एक वस्तु साफ-स्पष्ट दीख रही थी। कादिर दीवार की तरफ पीठ किये अपनी खाट पर बैठा था और उसके पास ही बशीर की खाट बिछी थी। बशीर के ठीक सामने, कादिर हुसैन के सिर से लगभग छः फुट ऊपर—वही अन्तिम प्रस्तर मूर्ति—लैम्प के प्रकाश में दिव्य तेज से चमक रही थी। उसका अंग-अंग आलोकित हो रहा था। जैसे—माता के पास बैठा हुआ बालक, किसी ऐसी वस्तु को—जो किसी भी तरह छिपाई नहीं जा सकती—अपने हाथ में उठाकर यह चाहता है माता की दृष्टि उस पर न पड़े, वृद्ध कादिर हुसैन भी कुछ ऐसी ही बात सोच रहा था। वह अपने खुदा से—मन ही मन—मना रहा था; उसके पुत्र की दृष्टि उस मूर्ति पर न पड़े।—कैसी अद्भुत विडम्बना थी; यह कैसी असम्भव कामना!

यह लैम्प ही सब विपत्तियों की जड़ है—अन्त में उसने सोचा। —"अगर इसे बुझा दिया जाय, तो कैसा हो? न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी; अन्धेरा होते ही मूर्ति का दीखना बन्द हो जायगा""""बस, यही ठीक है" —विचार आते ही वह लैम्प बुझाने के लिये उठा। मगर एक दूसरे विचार ने उसे वहीं

रोक लिया। —"इतनी जल्दी लैम्प बुझा देने की बात पसन्द कौन करेगा? अभी आठ ही तो बजे हैं। तब?......तत्क्षण एक नई योजना उसके हृदय में उत्पन्न हुई और उसका हृदय पुलकित हो उठा। —"अगर लैम्प की जगह बदल दी जाय, तब कैसा हो?......यही ठीक भी है......सांप भी मर जायगा लाठी भी न टूटेगी......स्थान परिवर्तन कर देने से, अवश्य ही मूर्ति पर प्रकाश पड़ना बन्द हो जायगा और बशीर उसे न देख सकेगा......फिर, कल की कल देखी जायगी"—खूब निश्चय कर कादिर खाट छोड़ शीत में ठिठुराता हुआ लैम्प की तरफ चला।

"क्या चाहिये तुम्हें, अब्बा? तुम बैठो न, मैं लिये आती हूँ"—कहती हुई नसीबन झटपट रजाई फेंक उठने लगी।

"नहीं, कोई खास बात नहीं है। मैं जरा यों ही, उस लैम्प को उधर आले में रखने चला हूँ। —अरे, तुम रुक क्यों गये, बेटा?......हां-हां, आगे सुनाओ न अपनी कहानी। बड़ी दिलचस्प हैं तुम्हारी बातें......मालूमात से भरी हुई"—कहते हुए उसने लैम्प उठा एक दूसरे आले में रख दिया।

—"अब शायद आंखों पर सीधी रोशनी न पड़े।"—कहता हुआ वह लौटकर अपनी खाट पर आ बैठा। मगर इससे मामला और भी बिगड़ गया। प्रस्तर-मूर्ति पहले से भी अधिक चमकने लगी।

अब वहां से उठाकर वह—उसे किस आले में रक्खे? वह एक और, तीसरा आला है तो सही, मगर इतनी जल्दी जल्दी बदला बदली करने से कहीं बशीर को शक न हो जाय। कुछ क्षण तक मन मारे वह अपनी खाट पर बैठा रहा। मगर उसे तो एक एक पल भारी हो रहा था। उसे ऐसा जान पड़ा लैम्प का परिवर्तन किए हुए उसे काफी देर हो गई है और किसी को उस बात का ध्यान भी नहीं रहा है। इसलिये, वह फिर उठा।

"ये आज क्या हो रहा है तुम्हें, अब्बा? पहले लैम्प इधर से उधर रखा—अब फिर न जाने क्या करने उठे हो। मुझ से कहो न, मैं करदूँ तुम्हारा काम?"—नसीबन फिर बोली।

"आज सचमुच, मुझे न जाने क्या हो रहा है, बेटा। न जाने रोशनी इतनी बुरी क्यों लग रही है, मुझे। बस, जरा सी बत्ती ही धीमी करूंगा और कुछ नहीं।"

"तो ठहरो, मैं किये आती हूँ"—नसीबन उठने लगी।

मगर बशीर को तेज बिजली के प्रकाश का अभ्यास था। इस पुराने लैम्प का प्रकाश उसे पहले ही धुंधला सा प्रतीत हो रहा था। अब उसे और भी धीमा होते देख वह सिट-पिटा उठा।

"अब इससे भी क्या कम रोशनी? तुम रहने दो न, बहन। ···बत्ती को वैसा ही जलने दो। लो, तुम तो अब सो जाओ, अब्बा अपना मुँह ढांक कर······ये रोशनी की तकलीफ तो रहेगी

ही"—कहता हुआ वह फिर बढ़ बढ़ कर बातें सुनाने लगा। नसीबन चुपचाप लौट कर बिस्तर पर आ बैठी और वृद्ध कादिर ?··· वह, आंखें फाड़कर पुत्र का मुंह ताकने लगा ?

परन्तु हाय रे, विधि का विधान ! उसकी समस्त चौकसी, सारे प्रयत्न और समस्त प्रार्थनाएं होनहार को न रोक सकीं। अकस्मात् बशीर की नजर उस मूर्ति पर पड़ी और उसकी आंखें लाल हो उठीं। बातें सुनाना बन्द कर वह एक टक मूर्ति को देखने लगा। फिर एक दीर्घ श्वास खेंच कर बोला—

"कल इसे भी खनम करो, अब्बा। झगड़ा निबटे।"

जैसे हरिण को गोली लगी हो। कादिर चौंक उठा, बोला—"क्यों, इसमें झगड़ा क्या है ? वह कुछ खाने को मांगती है, क्या ?"

"अब आपको कौन समझावे ? नबी के मुरीद होकर आप जब ऐसी बातें करने लगते हैं, अब्बा·········सचमुच मुझे बहुत अफसोस होता है। आप को तो कोई कुछ नहीं कहता, मगर दोस्तों के ताने—मेहने मुझे ही सहने पड़ते हैं न,—यह है झगड़ा।"

"कुछ भी सही। मगर जब तक मैं जीता हूँ, इस मूर्ति को किसी को न छूने दूंगा"—वृद्ध की आंखें चमक उठीं, ओठ फड़क उठे।

"खैर, यह सब कल देख लिया जायगा"—कहकर बशीर ने रजाई ओढ़ी और लेट गया।

× × ×

आधी रात का समय था। सब सो रहे थे, मगर गीता के संयमी की तरह लैम्प जाग रहा था। उसके साथ ही एक और व्यक्ति भी जाग रहा था—बशीर। उसकी आंखों में अभी तक नींद न थी। वह रह रह कर मूर्ति की तरफ देख रहा था।

कैसी तेजोमयी मूर्ति थी, वह। कितनी सुन्दर! उसके मुख पर करुणा थी और क्षमा। आंखों में रौद्र वीरत्व। सिर पर जटा जूट - चन्द्र कला—पवित्र जाह्नवी धारा। नील कण्ठ में काला नाग······फण उठाये हुए फूत्कार करता हुआ।

बशीर मूर्ति के अङ्ग प्रत्यङ्ग पर दृष्टिपात करता और ठहर कर फिर कुछ सोचने लगता। शनैः शनैः उसका मन चंचल हो उठा। कितनी ही पुरानी स्मृतियें उसके हृदय पर अङ्कित होने लगीं: एक अटूट विचार शृंखला············

—अभी दो ही मास पूर्व·········मुजफ्फर नगर का वह तेजोमय संन्यासी; पचहत्तर साल का वृद्ध······श्वेत केश, श्वेत भौंहें, श्वेत श्मश्रु। आया था उसकी जेल में। उसी की आज्ञा से, उसके नेत्रों के सामने ही—उस सूने दण्ड गृह में, कितनी यातनायें दी गई थी······उसे। कशा घात-घूंसे-मुक्के-लातें-गालियें; सब कुछ। परन्तु वह मुसकराता ही रहा। प्रवाहिका

का भयङ्कर आक्रमण भी उस पर हुआ, मगर तब भी वह शान्त था। पूछने पर कहता—देह क्षण भंगुर है, आत्मा अमर। इसे शस्त्र नहीं काट सकते, आग नहीं जला सकती। अन्त में एक दिन यही कहता हुआ........समाप्त हुआ। ओह, कितनी बेचैनी थी उस दिन.....उस आठ जुलाई की भयङ्कर रात को........

उसने एकबार फिर मूर्ति की तरफ देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ वह खिलखिला कर हंस रही है। उसका मुख उसी वृद्ध संन्यासी के मुख से मिलता है।........धीरे धीरे मुख फैलने लगा। हास्य ध्वनि बढने लगी। नेत्र जल उठे, काला सांप बल खाकर फुफकारने लगा—जाह्नवी धारा मलिन हो गई.....ठीक सावन की गङ्गा की तरह। बादल गरजा, बिजली चमकी, हवा हू-हू करने लगी और किसी ने जोर से उसके दरवाजे को धक्का दिया।

बशीर चीख उठा—कल्याणानन्द ! कल्याणानन्द ! माफ ......माफ......

कादिर हुसैन की नींद खुल गई। नसीबन जाग उठी। देखा—पागलों की तरह मुंह बायें, वह मूर्ति की तरफ देख रहा है, निश्चल-निस्तब्ध। उसमें प्राण हैं कि नहीं सन्देह था।

"भाई-भाई !!"—नसीबन ने कन्धा पकड़ कर हिलाया। मगर वह कुछ न बोला। मूर्ति की तरफ देखता रहा।

"माफ करो, माफ करो" —वह एक बार फिर चिल्लाया और काठ की तरह लुढ़क कर जमीन पर गिर पड़ा ।

"बेटा ! बेटा !!" —कहता हुआ कादिर खाट से उठकर दौड़ा । उसने अपने एक मात्र पुत्र......वंश वृक्ष के उस अन्तिम चिन्ह को बलपूर्वक गोदी में उठा लिया । न जाने आज उसके बूढ़े शरीर में इतनी ताकत कहां से आ गई थी !

मगर उसके पूर्वजों की दुर्लभ कला के अन्तिम चिन्ह ने उसे कभी का निष्प्राण बना दिया था......निर्जीव !!

× × ×

अनेक दिनों बाद रानीपुर की गलियों में एक बूढ़ा दिखाई पड़ा......वही वृद्ध कादिर । बायें हाथ में तानपूरा सम्भाले वह गली गली गाता फिरता । कितने ही गीत......कितनी ही दास्तानें । उसके कण्ठ में माधुर्य था और स्वर में करुणा । जो सुनता पिघल जाता ।

उस दिन सायंकाल के अन्धकार में दूर......किसी गली में, शायद वही तो गा रहा था:—

"मुँह में जबां मुसाफिरे—
खस्ता के है, मगर गजब ।
दिल की न बात कह सका
उफ...रे, ये बे जुबानियां ।।"

धर्मप्रकाश

कल्याणी कस्बा नागाप्पा धर्मप्रकाश को पाकर कृतार्थ हुआ। वही उसकी कर्मभूमि थी। वह वहां की निर्बल हिन्दू जाति को; स्वाधीनता-समानता का उपदेश देकर, शस्त्र विद्या की शिक्षा देकर, जगाता फिरा और अन्त में अनेक संख्यक शत्रुओं में घिर कर, २७ जून १६३८ को रात के आठ बजे, भाले-तलवारों की वृष्टि सहता हुआ वीर शय्या पर सो गया। अधिकांश अपराधी भाग गये; जो पकड़े गये अदालत से छोड़ दिये गये।

प्रायश्चित्त

—हिन्दू-मुसल्मान दोनों एक ही भगवान की सन्तान हैं। उनमें प्रेम उत्पन्न करना प्रत्येक भारतीय का परम कर्तव्य है।

अजमेर से उत्तर-पूर्व की तरफ जो सड़क गई है, किसी शाही जमाने में वह बहुत चलती थी। मगर अब उससे कुछ हट कर जो दूसरी, नई सड़क बन गई है, उसके कारण उस पुरानी सड़क का कुछ भी महत्व नहीं रहा है। घास पौदों में मुंह छिपाये हुए अब वह रोती सी जान पड़ती है और उसके आस-पास.....दूर तक.....सुनसान वन बढ़ आया है। वन में कभी कदाचित् ही, कोई भूली भटकी गाय-बकरी आ निकलती है; नहीं तो उधर कोई नहीं जाता।

एक तो, उधर जाने का काम ही क्या पड़ता है; दूसरे—जो घसियारे या चरवाहे, उधर घास खोदने, ढोर चराने कभी कभी जाया भी करते हैं; कुछ दिन से उन्होंने भी—उधर जाना बन्द कर दिया है।

जङ्गल के बीचों बीच—एक टूटी-फूटी कब्र है; किसी पहले जमाने की। ऊँची, घनी झाड़ियों में छिपी रहने से वह स्पष्ट नहीं दीखती; बल्कि—यों कहना चाहिये, दीखती ही नहीं है। एक दिन उधर से किसी के रोने का शब्द सुन, चरवाहे ने समझा—कब्र का मुरदा किसी वजह से उठ आया है और रो रहा है। इस पर वह स्वयं तो सिर पर पैर रखकर भागा ही, बात फैल जाने से, उधर और सबका आना-जाना भी बन्द हो गया।

गत वर्ष अपने एक मित्र के विवाह पर मुझे अजमेर जाना पड़ा। एक सुन्दर जनवासे में हमारी बरात ठहरी। पहुँचते ही शाही—स्वागत हुआ। मिठाई की प्रातःकालीन-तश्तरियें उड़ाकर अभी सब लोग सम्भले ही थे कि मध्याह्न के भोजन की सुगन्ध ने बरातियों की निष्प्राण भूख को फिर चमका दिया और मित्रों ने उसपर भी खुलकर हाथ साफ़ किये। फिर—उदर गुहामें ताज़ा गुलदाना और खस्ता कचौरियों की सुरक्षित समाधि बना सबने अपने पलङ्गों की शरण ली।

मगर मुझे कल कहां ? बूट कसे, कोट पहना और जिधर

सींग समाये, निकल पड़ा। अब जब सींग समाने की ही बात थी, तो उनका बस्ती से सम्बन्ध भी क्या ? —और फिर गन्दी गलियों से भरे नगर में मेरे योग्य दर्शनीय पदार्थ होता भी क्या ? वह······उधर, दूर······मधुर वन श्रेणियें विकसित पुष्पों का शृङ्गार किये मध्याह्न-बेला का सुख-विश्राम ले रही हैं। वन-भक्त का मार्ग तो उधर ही था। बस्ती से बचता हुआ मैं प्रकृत मार्ग छोड़ उसी शून्य वनभूमि की तरफ चल दिया।

आधे ही घण्टे बाद, मार्ग में एक चरवाहा बकरियें चराता हुआ मिला। मुझे देखते ही वह चौंका और मुझे उधर जाने से रोकता हुआ—मेरी तरफ भागा।

"उधर न जाना······उधर न जाना, बाबू जी। उधर सैयद रहता है। कभी कभी कब्र से उठकर रोता भी है······"—उस भोले शुभचिन्तक ने मुझ से कहा।

मगर मेरा कौतूहल बढ़ गया। रहस्य जानने के लिये मैं उधर ही चल पड़ा। चरवाहा पहले तो आश्चर्य से मेरी तरफ देखता रहा; फिर एक पलाश-वृक्ष की सघन छाया में लेटकर निश्चिन्त हो गया। सोचना होगा—अगर कुछ हो गया तो अब उसका दोष नहीं है। उसने तो अपना कर्तव्य निवाह दिया।

मैं जङ्गल में घुसा ही था कि रोने का शब्द सुनाई पड़ा। मैं किञ्चित् चौकन्ना हुआ और आगे बढ़ने लगा। अकस्मात्, झाड़ियों के बीचों बीच एक जीर्ण कब्र पर मेरी दृष्टि

पड़ी। रोने का शब्द वहीं से आ रहा था। मैं कुछ और आगे बढ़ा और छूटते ही कई कदम पीछे हट गया।

विचित्र दृश्य था! एक दीर्घकाय, श्याम-वर्ण आदमी—दो फुट लम्बा डण्डा हाथ में पकड़े—कब्र के ठीक ऊपर बैठा हुआ है। डण्डे के अग्र भाग पर तेज़ नोकों वाली तीन लम्बी कीलें गड़ी हैं; आदमी का समस्त शरीर नग्न है और रह रह कर वह उसी डण्डे को अपने शरीर पर मार रहा है। कीलें खच्च से चुभ जाती हैं और शरीर से रक्त बहने लगता है। इस तरह उसका समस्त शरीर उन कीलों से विंधा हुआ था और उनकी पीड़ा से छटपटा कर वह रो रहा था।

मुझ से यह सब न देखा गया। अब की ज्योंही उसने डण्डा मारने को हाथ उठाया, मैंने दौड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और उससे इस विचित्र—संसार से न्यारी—हरकत का कारण पूछा।

वह थोड़ी देर तक तो सिर झुकाये बैठा रहा फिर एक गहरी सांस लेकर यों कहने लगा—

× × ×

"मैंने सोचा तो यह था—इस रहस्य को अपने हृदय में छिपाये ही मर जाऊँ; मगर आज आपके आने से मुझे ऐसा जान पड़ता है, यदि मैं संसार के सामने अपना अपराध प्रकाशित करदूँ, तो ठीक ही होगा। सम्भव है इससे, अपराध

मार्ग पर पैर रखने के लिये उद्यत, किसी गुमराह-युवक का हृदय बदल जाय और कीचड़ में घुसने से पहले ही वह अपना चरित्र सुधार ले।

मैं इसी अजमेर का रहने वाला कलईगर हूँ। मगर यहां मेरा धन्धा कुछ चमका नहीं। इसी बीच में एक दिन, मेरे एक मित्र ने, जो दक्खन हैदराबाद रहता था और किसी काम से अजमेर आया हुआ था—मेरे सामने हैदराबाद की बड़ी तारीफ़ की। लौटते वक्त मित्र मुझे अपने साथ हैदराबाद ले भी गया और वहां मेरा काम खूब चमका। दो ही साल में हजार पांच सौ रुपया मेरे पल्ले हो गया। काम धन्धा छोड़ मैं दौरे पर निकल पड़ा। मेरी इच्छा हिन्दुस्तान भर की बड़ी बड़ी मसजिदों में नमाज़ पढ़ने और मशहूर दरगाहों का सिजदा करने की थी।

मैं पैदल यात्रा कर रहा था और जहां शाम हो जाती ठहर जाता। एक दिन एक छोटे से कस्बे में मुझे शाम हुई और वहीं ठहर गया। नाम था कल्याणी। वहां देर से हिन्दू-मुसलमानों में तनातनी चली आ रही थी। हिन्दू कहते-- उन्हें अपने मन्दिरों तक की मरम्मत नहीं करने दी जाती और जान बूझकर उनके पूजा-पाठ में रोड़े अटकाये जाते हैं। उनकी आजादी छीनकर उन पर आये दिन जुल्म किये जाते हैं।

सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। भला, जब हिन्दू-मुसलमान

दोनों एक ही खुदा की सन्तान हैं और उसकी नजरों में बराबर हैं तब किसी की आजादी छीनने या धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुंचाने का किसी को अधिकार ही क्या है? यदि खुदा पाक़ को हिन्दू धर्म इतना ही नापसन्द होता, तो क्या उसमें इतनी ताक़त न थी, वह उसे दुनियां के परदे से ही उठा देता?

मैंने जब अपने ये खयालात वहां के प्रमुख मौलवी के सामने रखे, उसने बड़ी शान्ति से जवाब दिया कि वे लोग खुद भी हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद के हामी हैं और हर्गिज़ किसी के साथ बे-इन्साफी होते देखना नहीं चाहते। दर असल यहां के हिन्दुओं को मुसलमानों से कोई शिकायत है भी नहीं। वे लोग बरसों से इस्लामी अमलदारी में खुशी से बसते आ रहे हैं। मगर चन्द साल से हिन्दुओं में कुछ ऐसे शरारती पैदा हो गये है जो छोटे से छोटे हिन्दू-मुस्लिम सवाल को भी मजहबी रंग दे देते हैं और हिन्दू-मुस्लिम-इत्तहाद में रोड़े अटकाते रहते हैं। हम लोग इन्हीं शरारतियों को सज़ा देना चाहते हैं।

उसकी बातों का मुझ पर बहुत असर पड़ा और जोश में आकर पूछ बैठा कि इत्तहाद की राह में रोड़े अटकाने वाले ऐसे कौन कौन शख़्स हैं?

"यों तो कितने ही हैं"—मौलवी ने कहा।—"मगर नागाप्पा नामक एक नौजवान ने यहां आज कल बहुत उपद्रव

मचा रखा है। जहां कहीं किसी ग़रीब मुसलमान को देखता है, पीट डालता है······लूट लेता है। सब परेशान हैं कि क्या किया जाय? जगह जगह हिन्दुओं के अखाड़े खोलता फिरता है, तलवार-बन्दूक चलाना···कवायद करना सिखाता है और धमकी देता है कि छः ही महीने में वह हैदराबाद से इस्लाम की जड़ मिटा देगा।"

सुनते ही मेरा जोश बल खा गया। अपनी यात्रा बन्द कर मैं कल्याणी में ही ठहर गया और निश्चय किया कि जब तक नागाप्पा को कत्ल न कर दूँ आगे न बढ़ूंगा।

× × ×

जिस दिन पहली बार मैंने नागाप्पा को देखा—मेरा दिल पसो-पेश में पड़ गया······गहरे संशय में। कितना सुन्दर चेहरा था, वह! कितना हंसमुख······कितना भोला! उसकी हरेक बात से ऊंचे दरजे की शराफत टपकती थी। उसकी बातों में मिठास था······शहद सा। जरा देर के लिये, सचाई मेरे दिल में चमकी—मगर जल्दी ही बादल घिर आये, अंधेरा हो गया। फिर वही क्रोध, वही बदले की भावना।

एक दिन मौक़ा पाकर मैंने उस पर हमला किया। मगर जैसे कोई गेंद को पकड़ कर उछाल देता है, उसने मुझे गर्दन से तोल कर इस तरह फेंक दिया कि मैं पांच गज़ दूर एक पत्थर पर जाकर गिरा और बेहोश हो गया।

अब तो मैं उसका पक्का दुश्मन बन गया। मैंने जल्दी ही एक गिरोह तय्यार किया और उस पर हमला करने का मौक़ा ढूंढ़ने लगा।

सत्ताईस जून सन् १९३८ की बात है। हम लोग छाया की तरह उसके पीछे लगे थे। रात का समय था। गर्मियों के दिन। लोग अपने घरों की छत पर या आंगन में खाटें बिछाये पड़े थे और हम हत्यारे चोरों की तरह नागाप्पा की राह देखते हुए एक मकान की ओट में बैठे थे। आठ का गजर बजा और नागाप्पा अकेला आता हुआ दिखाई दिया।

पास······और पास······और मैं साथियों समेत उस पर टूट पड़ा। वह खाली हाथ था और हम भाले-तलवारों से लैस थे। तब भी उसने पांच सात को जख्मी कर ही दिया और अन्त में पचासों हथियारों की चोट खाकर ज़मीन पर गिर पड़ा। "कायरो, एक निहत्थे पर"—अभी वह इतना ही कह पाया था कि मैंने तलवार का एक भरपूर हाथ उस पर छोड़ा और वह वहीं ख़तम हो गया। हिन्दू-मुस्लिम इत्तहाद के इस सबसे बड़े दुश्मन का काम तमाम कर मेरे दिल की कली खिल उठी। मैं कितना खुश था!

× × ×

उस दिन के बाद मुझपर कितनी ही विपत्तियें आईं। मेरे इकलौते बेटे की मौत हुई, रुपया चोरी गया और अन्त में एक दिन तेज़ मियादी बुख़ार ने मुझे खाट पर ला पटका।

ऐसे वक्त जिन साथियों से मुझे मदद की उम्मीद थी—वे अपनी ही मुसीबत में फंसे थे। पुलिस बड़ी सरगर्मी से उनका पीछा कर रही थी और वे अपने आपको बचाने के लिये इधर उधर भागते फिर रहे थे। उनमें से कितने ही गिरफ्तार हो चुके थे। मुझे भी हर वक्त अपने पकड़े जाने का अँदेशा लगा रहता। जरा सी आहट होते ही दिल धड़कने लगता, आ गई पुलिस !!

गन्दे मोहल्ले के एक टूटे फूटे मकान में, मैं एक चारपाई पर पड़ा था। तेज़ बुखार में बेहोश। वहां मेरा था ही कौन, जो मेरी सुध लेता। तिस पर: चोरी हो जाने से एक भी पैसा मेरे पास न था। दवा दारू का बन्दोवस्त भी कहां से करता? अपने बिस्तर पर पड़े पड़े मैंने कितनी ही बार सोचा—पुलिस को अपना पता दे दूं। गिरफ्तार हो जाऊँगा तो क्या, इस मुसीबत से तो छूट जाऊंगा – इलाज तो हो जायगा। ओह, कितना गन्दा था वह मोहल्ला ! कितनी बदबू वहां आ रही थी !!—या खुदा·· या खुदा·····

जहां मैं पड़ा था, एक नेक दिल मुसलमान मेरे पास ही रहता था। बड़ा ग़रीब था बेचारा। मगर वह कभी कभी मेरी सुध लेता रहता और जब कभी मेरे वास्ते दवा दारू भी ला देता। मेरी हालत पर उसे बड़ा तरस आता। मगर वह क्या जानता था, मैं एक खूनी हूँ······जबर्दस्त खूनी !!

एक दिन, दोपहर के वक्त, वह मेरे पास बैठा मुझे पंखा झल

रहा था, कि न जाने उसे कैसे ख्याल आ गया, एकाएक बोल उठा—

"अगर नागाप्पा आज जिन्दा होता, तुम्हें यह मुसीबत न झेलनी पड़ती। उसके पास खबर पहुंचने की देर थी, अपने आप तुम्हारी दवा दारू का बन्दोबस्त हो जाता। पैसा मिलता··· ख़िदमत मिलती—

"नागाप्पा !!"—मेरा माथा घूम गया।

"हां, नागाप्पा। वही जिसे इस्लाम का दुश्मन समझ चन्द इस्लाम के दुश्मनों ने उस दिन कत्ल कर दिया। कितने ऊंचे दिल का आदमी था वह! ग़रीबों का गला काट कर, हिन्दू-मुसलमानों में फूट डलवा कर, अपना उल्लू सीधा करने वाले, खुद गरज़, पूंजी पतियों के लिये वह कुछ सख्त जरूर था, लेकिन गरीब हिन्दू-मुसलमानों के लिये उसके दिल में रहम का दरिया बहता था। उसे·····

वह कह ही रहा था कि मेरा माथा चकराया और एकबार—ओफ—करके मैं बेहोश हो गया।—काश, मुझे इस सचाई का पहले पता होता !!"

× × ×

यह कहकर क़यामतअली ने—चूंकि यही उसका नाम था—अपना सिर लटका लिया और वह देर तक न जाने क्या सोचता

रहा ? अकस्मात्, वह फिर तड़पा और पहले ही की तरह फिर अपने ऊपर अत्याचार करने लगा।

सायंकाल हो रहा था, उसका रुदन-शब्द वन भर में गूंजने लगा।

श्यामलाल

सन् १६०३ में पण्डित श्यामलाल का जन्म भालकी ग्राम जिला, बीदर, निज़ाम राज्य में हुआ था। इनके पिता का नाम पण्डित भोलानाथ था। बचपन से ही इन पर विपत्तियों का आक्रमण हुआ। एक बार सांप ने डस लिया, एक बार नदी में डूब चुके, आठ दस बार घातक व्याधियों में फंसे—परन्तु सदा बचते रहे। इनका विश्वास था, ये इस तरह की गृहस्थी-मौतों से नहीं मर सकते। सन् १६२५ में ये वकील बने। जन्मसिद्ध तार्किक और व्याख्याता होने के कारण इनकी वकालत अच्छी चमकी। सन् १६३८ के हिन्दू मुस्लिम दङ्गे का लाभ उठा कर पुलिस ने इन्हें गिरफ्तार किया और अनेक कष्ट उठाने के बाद ये १७ दिसम्बर १६३८ को जेल के रणक्षेत्र में सदा—सर्वदा के लिये वीर-शय्या पर सो गये !!



प० श्यामलाल

ता० १६–११–३६ को बदर जेल में मृत्यु हुई ।

वीर-शय्या

—रणक्षेत्र में ही मेरी मृत्यु होगी; घर पर नहीं। मृत्यु का आह्वान मुझे स्पष्ट सुनाई दे रहा है।

खपरैल की छत वाले एक मकान में, एक काष्ठ शय्या पर श्याम अर्ध चेतनावस्था में बैठा था। काले सांप का विष उसके शरीर में तेजी से व्याप रहा था और क्षण क्षण में उसकी स्थिति अत्यन्त चिन्ता जनक हो रही थी। केवल उसके बाल्य-यौवन का उन्माद ही उसे अब तक मृत्यु से बचाए हुए था।

पण्डित भोलानाथ अपने पुत्र के पास बैठे, उसे इधर उधर की बातों में लगा रहे थे, ताकि निद्रा न आए। उन्होंने सुन रखा था, यदि सांप काटे को नींद आजाय तो वह किसी भी तरह नही बच सकता।

सामने—सांप का विष उतारने वाला ग्राम—चिकित्सक, एक लिपे पुते फर्श पर बैठा बड़ी समझदारी से, न जाने किधर के मन्त्र जप रहा था और बीच २ में चावल के दाने इधर उधर फेंकता जाता था।

"प्रभु की सौगन्ध—इस चिकित्सक को मेरे सामने से हटाते क्यों नहीं तुम, बन्सी भैया ? अब मैं और कितनी बार तुम से कहूँगा ?"—अन्त में श्याम बोल उठा।

"भला, कैसी बात करता है तू, बेटा ?"—भोलानाथ बीच में ही बोल पड़े।—"चिकित्सा न होगी तो प्राणों की रक्षा कैसे हो सकेगी ?"

"कह तो रहा हूँ, सांप का विष मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। मेरी भाग्य पुस्तक में ऐसी गृहस्थी-मौतें लिखी ही कहां हैं ? केवल वीर-शय्या, वीरों की मृत्यु ''रणक्षेत्र की मौत ही मेरे भाग्य में लिखी है।—कहा नहीं था यह सब—उस दिन पण्डित शम्भु दत्त ज्योतषी ने आपके सामने ? उन्होंनें मेरी जन्मपत्री देखकर ही तो बताया था। अरे, आप को तो कुछ याद नहीं रहता ; पिता जी। अच्छा आप......"

वह बोलता ही जा रहा था। उस के नेत्र लाल हो रहे थे, शरीर ऐंठ रहा था, वाणी लड़खड़ा रही थी। देख कर पण्डित भोलानाथ का हृदय धड़कने लगा—"अवश्य ही सांप का विष

काम कर चुका है, और उसकी बहक में ये ऐसी बातें बोल रहा है।" —वे मन ही मन सोचने लगे।

मगर श्याम के ज्येष्ठ भाई बन्शी को उसकी विचित्र बातों पर, इस विपत्ति काल में भी हंसी आ रही थी।—यह कल का लड़का न जाने क्या समझ रहा है, अपने आप को? कैसी बढ़ २ कर बातें बना रहा है!!

भाई को हंसते देख श्याम को आग सी लग गई।—"तो क्या तुम झूठ समझते हो, बन्सी भय्या?"—वह झल्लाकर बोला।—"अच्छा, बताओ तो सही, उस दिन मैं नदी में डूब कर भी क्यों न मरा? इसका क्या कारण था? कम्बख्त युद्ध ज्वर ने जिसे पकड़ा, मार डाला—मगर मैं ही क्यों बच गया? मकान से गिर कर भी नोकीले पत्थर मेरी इन दुर्बल हड्डियों को चूर चूर क्यों न कर सके? दो, उत्तर दो न।—बस, अब हंस रहे हो!—उत्तर तो नहीं दिया जाता न!······उहं·· खि·· खी खी···।

श्याम जितना ही मुँह चिढाता जाता, बन्शी की हंसी बढ़ती जाती। यहां तक कि वृद्ध भोलानाथ भी हंस पड़े।

परन्तु अन्त में श्याम की बात सच निकली। रात भर सारा घर चिन्ता में जागता रहा। रात्रि में दो तीन बार ऐसा भी जान पड़ा, अब उसके प्राण न बचेंगे। वह कई बार मूर्छित हो हो कर गिरा। परन्तु प्रभात होते होते उसे पूरा होश था। उसने

पानी मांगा और खूब पेट भर कर पिया; फिर वह इस तरह बातें करने लगा—जैसे उसे कुछ हुआ ही न था। जो सुनता आश्चर्य करता।

इस घटना ने श्याम का मूल्य बढ़ा दिया। उसके लिये लोगों के हृदय में सन्मान बढ़ा, श्रद्धा बढ़ी। अब, जब वह कोई भी बात कहता, लोगों को विश्वास हो जाता।

वह अभी विद्यार्थी ही था। बस्ता संभाल स्कूल जाया करता मगर अब उसके शिक्षक भी उसका सन्मान करते। अपने सह-पाठियों में तो उसके अनेक भक्त थे। स्कूल की वाद-विवाद सभाओं में वह जिस पक्ष को लेकर मंच पर खड़ा हो जाता, वही विजयी होता। भाषण-कला में वह सिद्धहस्त वक्ता माना जाता। ऐसा शायद ही कोई दिन जाता जब किसी न किसी सिद्धान्त विषय पर वह अपने विरोधियों से एक-आध बार न उलझ लेता। अब वह श्याम नहीं—पण्डित श्यामलाल कहलाता और जनता बड़े चाव से उसके भाषण सुनती।

वह प्रायः अन्याय और अत्याचारों के विरुद्ध व्याख्यान देता। ग़रीबों पर अत्याचार करने वाले अमीरों के विरुद्ध, भक्तों को भ्रम-जाल में फंसाने वाले धर्म-गुरुओं के विरुद्ध, दलितों के साथ अन्याय करने वाले आत्माभिमानी हिन्दुओं के विरुद्ध, वह तीव्र-आलोचना करता। इसका यह सहज परिणाम हुआ कि शासकवर्ग तथा प्रजा में उसके अनेक शत्रु पैदा हो गये।

शनैः शनैः शत्रुता यहां तक बढ़ी कि उस पर कई बार आक्रमण भी हुए और अनेक सरकारी अभियोग चलाये गये। परन्तु इस से उसका मुख बन्द न हुआ।

× × ×

पं० श्यामलाल, वकील श्यामलाल बन गये।

वकील के लिये कुछ ज़रूरी मर्यादाओं का पालन करना आवश्यक होता है। जो पैसा दे उसी का पक्ष लेना चाहिये—चाहे पक्ष झूठा ही क्यों न हो। अभियोग जीतने के लिये अपने गवाहों को कृत्रिम पाठ स्मरण कराना ही चाहिये—चाहे वह कितना ही झूठ क्यों न हो। कभी कभी, सरकारी अधिकारियों और मान्य न्यायाधीशों की हां में हां भी मिला लेनी चाहिये—चाहे वे कितने ही रिश्वतखोर और अत्याचारी क्यों न हों!! इसके साथ ही वकील के लिये सामाजिक प्राणी होना भी आवश्यक है। श्यामलाल को यह सब पहले से ही प्राप्त था। धड़ाधड़ केस आने लगे और थोड़े ही समय में उनकी वकालत चमक उठी।

विरोधियों ने कहा—बनावटी आदमी था। कलई खुल गई। जन सेवा और परोपकार का सब ढोंग था। जनता में प्रसिद्धि प्राप्त कर वकालत चमकाने का जाल था, जो अब साफ़ पता चल गया। अब कहां गये वे व्याख्यान; वे ऊँचे आदर्श—वह अन्याय का विरोध? अब क्यों नहीं वह अन्याय और अत्याचार

के विरुद्ध आवाज उठाता ? न्यायालय तो अन्याय और अत्याचार के सबसे बड़े गढ़ हैं । प्रतिदिन पचासों निरपराध व्यक्तियों के विरुद्ध झूठे निर्णय दिये जाते हैं । सैकड़ों को अन्याय पूर्वक दण्ड दिया जाता है । मगर अब उसी अन्याय में वह सहयोग देता है। झूठे और बनावटी मामले हाथ में लेकर उन्हें अपनी जिह्वा शक्ति के बल पर सच सिद्ध करता है और दोनों हाथों से चांदी बटोरने में लगा है।

× × ×

इधर श्यामाल के विरोधी इस तरह की बातें उड़ा रहे थे उधर पुलिस उन्हें फंसाने का कपट-प्रबन्ध रच रही थी।

सन् १९३८ का कार्तिक मास था । सायंकाल का समय। शहर में राम-वन गमन का जलूस बड़ी धूम धाम से निकल रहा था। एक सुन्दर रथ पर श्रीराम-लक्ष्मण और जानकी सवार थे। सुमन्त उदास हृदय से रथ हांक रहा था । पीछे पीछे अयोध्यावासियों की भीड़ रोती हुई चली आ रही थी। सड़क के दोनों ओर खड़े दर्शक चुपचाप इस करुण दृश्य को देख रहे थे। छज्जों पर बैठी स्त्रियें आंसू बहा रही थीं; उनके प्रिय राम अयोध्या को सूनी बनाकर बन जा रहे थे !

अकस्मात् एक तरफ की भीड़ में कुछ धक्का मुक्की हुई और तहलका मच गया। लाठियें उठाये हुए मुसलमान, जलूस पर टूट पड़े। कायर भाग निकले। मगर वीर मैदान में डट गये

खुलकर लाठियें चलीं और देखते ही देखते हिन्दू-मुसलमानों का सम्मिलित रक्त धरती पर बह निकला।

लड़ाई बन्द होते ही पुलिस शहर भर में फैल गई और चुन चुन कर अग्रगण्य हिन्दुओं को गिरफ्तार करने लगी।

स्वयं थानेदार दो सिपाहियों को साथ ले पं० श्यामलाल के मकान पर पहुँचा। मगर जब उसे बताया गया, पं० जी दस बारह दिन से बम्बई गये हुए हैं और अभी तक नहीं लौटे हैं; वह चिन्ता में पड़ गया।

"कब लौटेंगे ?"—अन्त में उसने पूछा।

"कुछ कहकर नहीं गये हैं। आंख का आपरेशन कराया है……अब जब भी अस्पताल वाले छुट्टी दे दें।"—भृत्य ने उत्तर दिया।

थानेदार लौट गया।

बीस दिन बाद श्यामलाल लौटे और आते ही उन्हें हिन्दू-मुस्लिम दंगे के समाचार सुनाये गये। उनकी अनुपस्थिति में दंगा हो गया, यह जान उन्हें बहुत दुःख हुआ। यदि वे शहर में होते कभी दङ्गा न हो पाता।

अगले दिन मध्याह्न का भोजन पाकर अभी वे शय्या पर लेटे ही थे कि द्वार के बाहर दो पगड़ियें दिखाई दीं। श्यामलाल तुरन्त बाहर पहुंचे—पुलिस थी। वे ही दोनों सिपाही और वही थानेदार !

"कहिये, कैसे कष्ट किया ?"

"तुम्हारे नाम यह वारण्ट है। तुम्हें पन्द्रह मिनिट तय्यारी के दिये जाते हैं, बाद में गिरफ्तार कर लिया जायगा।" थानेदार ने संक्षेप में कहा।

बिजली की तरह संवाद शहर में फैल गया और पल भर में मित्र मण्डली घर पर जमा थी। कुछ हास्य, कुछ विनोद—और जल्दी ही सबसे विदाई ले श्यामलाल थानेदार के सामने आ खड़े हुए। उन्होंने मुसकराते हुए अपने आप को पुलिस के सुपुर्द कर दिया।

× × ×

—"प्रिय बन्धु"—अन्त में पांच मास बाद, वंशीलाल को श्यामलाल का, जेल से पत्र मिला।—"सोचते होगे यह अचानक पत्र कैसा ? भई, आज कई मास बाद यह अवसर हाथ लगा है—सोचा कुछ लिख ही क्यों न डालूं। यों तो लिखने को बहुत सी बाते हैं, मगर इतना समय ही कहां है ? सब से पहले तो तुम्हें यह बता दूं कि मुझे किस अपराध पर गिरफ्तार किया गया है ? बामन, भूषण, दिगम्बर आदि अन्य कार्य-कर्ताओं की तरह पुलिस ने मुझे भी, पकड़ा तो हिन्दू-मुस्लिम दंगे के सम्बन्ध में ही है, परन्तु चूंकि उस दिन मैं शहर में उपस्थित न था, इसलिये बेचारी पुलिस को मेरा केस तय्यार करने में विशेष कष्ट उठाना पड़ा है मुझ पर यह दोष लगाया गया

है, कि मैं हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध भड़का कर दंगे से कुछ ही दिन पूर्व बम्बई भाग गया था और वहीं से—याने चार सौ मील दूर से—दङ्गाइयों का नेतृत्व करता रहा।—सूझ तो अच्छी है।

अब रही जेल-जीवन की बात। सो मैं तो इन जेलों को 'जेल' मानता ही नहीं हूँ; युद्ध क्षेत्र मानता हूँ—और देर से ऐसा ही मानता आ रहा हूँ। अभी दस ही दिन हुए, हमारे लिये जो नये दारोग़ा भेजे गये हैं, उन्होंने मेरी इस धारणा को और भी दृढ़ बना दिया है। इनके आते ही जेल का प्रबन्ध अ से ज्ञ तक एक दम बदल गया है। मुझे तो ये महाशय साम्यवाद के पक्षपाती से जान पड़ते हैं। निर्बल-सबल, रोगी-स्वस्थ सभी कैदियों को ये एक ही दृष्टि से देखते हैं। उन्होंने आते ही दूध नामक पदार्थ का तो एकदम 'बायकाट' ही कर दिया है। अब मरीज़ों को भी वह नहीं मिल सकता। इसके लिए इनका यह कहना है कि जब अन्य कैदियों को दूध नहीं मिलता तब रोगी श्यामलाल को भी क्यों मिलना चाहिये? इससे क्या समानता की भावना नष्ट नहीं होती? इसीलिये, शायद आजकल मुझे भी, ज्वार के दो मोटे टिक्कड़—क्षमा करना मैं उन्हें रोटी कदापि नहीं कह सकता—और मिरच-तेल से भरी खट्टी दाल दी जा रही है। जब बीमार होने के कारण, पांच छः दिन तक लगातार मैं इस दिव्य भोजन का सेवन न कर सका और भूखा पड़ा रहा, तो नये दारोग़ा साहब बेतरह बिगड़े।

"जब सभी खाते हैं, तो इसे भी खानी ही चाहिये"—कहते हुए वे एक दिन सशरीर मेरे सामने आखड़े हुए। जेल की खुराक मेरे सामने ही पड़ी थी। छूटते ही बोले—"तुम्हें खानी पड़ेगी यह खुराक"। मैं बोला—"जनाब, चौदह महीने से सिर्फ़ दूध पीता आ रहा हूँ। अभी छः महीने और भी बाकी हैं; डाक्टर की आज्ञा है। अब यदि मैं एकदम इस रोटी दाल को खालूँ, तो मेरा क्या हाल होगा, आप यह भी तो ज़रा सोचिये।"

"कुछ नहीं, तुम्हें यही खुराक खानी पड़ेगी। अगर कानून की खिलाफवर्जी करोगे, नतीजा बुरा होगा। बेतों से पीटे जाओगे।"

कह कर दारोगा चले गये।

तब से हर चौथे-छठे दिन बेतों की खुराक मिल रही है। भोजन बन्द है। तिस पर पैरों में भारी बेड़ियां भी डालदी गई हैं—ताकि कहीं दीवार फांद कर भाग न जाऊँ। रहने के लिये एक निर्जनकोठरी दे दी गई है ताकि आत्म चिन्तन का अधिक अवकाश मुझे मिल सके। सुनता हूँ डंडाबेड़ी की तैयारियें भी की जा रही हैं। और···और भी न जाने किन-किन चीजों की······।

जान पड़ता है अन्तिम घड़ी निकट आ रही है। नित्य ही—जब रात हो जाती है, जेल का संसार गाढ़ निद्रा में मग्न होजाता है और इस विस्तृत चार दीवारी में—"सब ठीक"—कहने वाले

पहरेदारों के अतिरिक्त और किसी का शब्द नहीं सुन पड़ता; मुझे दूर······भविष्य के अन्धकार में मृत्यु का गंभीर आह्वान सुनाई देता है। जैसे, कोई मुझे बुला रहा हो!

तुम्हें स्मरण होगा, वह दिन······आज से बीस वर्ष पूर्व का वह दिन······जब मुझे सांप ने डस लिया था और मैंने कहा था—रणक्षेत्र में ही मेरी मृत्यु होगी; घर पर नहीं। अब उस बात के सच होने का समय आ गया है। मैं एक बार फिर······अन्तिम वार······तुम्हारे बीच में लौटूंगा तो सही, मगर जीवित नहीं। केवल अपना अस्थिपंजर···अपनी लाश, लेकर।

उसे देखकर चौंकना मत, बन्धु। सब को कह देना—अत्यन्त आग्रह से कह देना; अधम श्यामलाल के लिये कोई शोक न करे···कोई आंसू न बहाये।—अच्छा,···विदा······अन्तिम विदा।"

× × ×

एक ही मास पश्चात्,—श्यामलाल का शव शोलापुर की श्मशान भूमि में उपस्थित था; कंकालमात्र; सहस्रों श्मशान यात्रियों से घिरा हुआ।

शव की अवस्था देखकर, उनके मित्रों को एक ही मास पूर्व के वे शब्द स्मरण हो आये जब श्यामलाल ने लिखा था—मैं जेलों को 'जेल' नहीं—युद्ध क्षेत्र मानता हूँ।

साधारण कैदियों के लिये जेल—'जेल' हो सकती है परन्तु श्यामलाल के लिये वह यथार्थ ही युद्ध-क्षेत्र था। भेद केवल इतना ही था—प्रकृत युद्ध-क्षेत्र में, दोनों ओर के सैनिकों के हाथ में शस्त्र होते हैं। इधर श्यामलाल निहत्थे थे और शासक—सशस्त्र। उनके अनेक प्रहारों को झेलते हुए ही उन्होंने सन्मुख युद्ध में अपने प्राण दिये थे। मगर ऐसा करते हुए उन्होंने ढाल-कवच का नहीं, एकमात्र सहन शक्ति का सहारा लिया था। क्या, यह एक वीर की, वीर शय्या न थी?

खांडेराव

श्री खांडेराव दत्तात्रेय शोलापुर जिले के निवासी थे। औरङ्गाबाद जेल में रोग शय्या पर पड़े थे। कैदी मरते हैं तो भले ही मरें मगर जेल के सिर उनकी हत्या न लगे—इस भावना से उन्हें कठिन ज्वर में ही रेल में निस्सहाय छोड़ दिया गया॥

गाली का रहस्य

—कायरतापूर्ण क्षमा माँगने की अपेक्षा मर जाना कहीं उत्तम है।

मोहम्मद उमर अपने सब्जे घोड़े पर बैठा निश्चिन्त होकर चला जा रहा था। प्रभात काल की ठंडी हवायें, उसे और उसके घोड़े को आह्लादित कर रही थीं। सामने हरी झरबेरियों के झुरमुट में कितने ही पखेरू एक साथ चहचहा रहे थे। आकाश मधु बरसा रहा था। वह मस्त होकर एक गीत गुनगुनाने लगा—

जो मज़ारे-मोहम्मद पै मर जायंगे,
नाम दुनियां में रोशन वो कर जायंगे ॥
जबकि देखेंगे बख़्शिश में कुछ देर है,
शह का दामन पकड़ कर मचल जायंगे ॥...

अकस्मात् उसने गाना बन्द कर दिया और घोड़े की चाल धीमी करदी। सामने; कंकरीली पगडंडी के घुमाव पर फ़क़ीर की इबादतगाह दीख रही थी; एक पवित्र स्थान !

किसी ज़माने में प्रसिद्ध चीतू पिंडारी और उसके भयानक सैनिक यहां 'संग्राम की देवी' चामुण्डा की पूजा किया करते थे। प्रसिद्ध था कि आज भी देवी पर बलि चढ़ाये गये प्राणियों की भूखी आत्मायें, अन्धेरी रातों में वह्नि शिखा बनकर चमका करती हैं। पास ही अमीर अली ठग और उसके साथियों द्वारा मारे गये अनेक संख्यक यात्रियों की मृत्तिका-समाधियें कहीं कहीं बनी हुई हैं। करील और साखू के शुष्क वृक्षों के अतिरिक्त—किसी तरह की कोई हरियाली—आस-पास नहीं दीखती। समस्त स्थान, एक रोमांचकारी, भयानक—किंवदन्तियों का क्षेत्र बना हुआ है।

मोहम्मद उमर यों तो खासा निडर आदमी था; मगर कब्र-स्थित प्रेतात्माओं के उठने-जागने, सैयद, भूत-प्रेत और खुदा के कोप आदि बातों पर बहुत विश्वास करता था। फ़क़ीरों की दुआ और गंडे-तावीज़—उसके लिये व्यर्थ नहीं—यथार्थ बातें थीं। इसीलिये इस गम्भीर वायुमण्डल में प्रविष्ट होते ही उसकी समस्त चञ्चलता एक साथ दब गई और बड़े भय और श्रद्धा से वह उस इबादतगाह की तरफ बढ़ने लगा—जहां आजकल एक फ़क़ीर रहता था।

शिक्षित लोग उसे पागल—और पुरानी चाल के आदमी उसे 'पहुँचा हुआ-फ़कीर' समझते थे। आदमी को देखते ही वह गालियें देता और ये गालियें ही श्रद्धालु भक्तों के उन प्रश्नों का

उत्तर मानी जातीं, जिन्हें पूछने के लिये वे इतनी दूर से यहां आते। फ़क़ीर का वर-शाप, दुआ-बददुआ, सब कुछ इन्हीं गालियों में छिपा रहता।

एक छायादार वृक्ष के नीचे, दो मटकों पर सफेदी पोत उन्हें बांसों के सहारे उल्टा लटका दिया गया था। पास ही, एक मलिन—अत्यन्त मलिन—जल भरा मटका पड़ा रहता। एक झाड़ू, एकाध लाठी, मोरछल, पत्थर—और थोड़ा ही ध्यान देने से इन समस्त वस्तुओं का एकमात्र स्वामी, वही फ़क़ीर—चीथड़ों में लिपटा हुआ, कहीं आस-पास ही दीखता; झूमता हुआ—हाथ पांव कंपाता हुआ।

मोहम्मद उमर को देखते ही फ़क़ीर चिल्लाया—"लौटजा, रिश्वतखोर—डाकू···लौटजा···।"

वह तत्काल घोड़े से उतर पड़ा। उसने दूर से ही—नहीं तो पास जाने पर फ़क़ीर पत्थर फेंक कर मारता—उसे झुककर प्रणाम किया; पास के एक ऊँचे पत्थर पर एक रुपया रखा और लौट पड़ा। उसका हृदय अत्यन्त प्रसन्न था। आते ही—बिना विलम्ब किये सन्त ने उसे गालियें दीं—याने उसके प्रश्नों का उत्तर दिया

× × ×

वह जेलर था। कैदी उसके नाम से कांपते। उन्हें अनुशासन में रखने के लिये उसने दण्ड-शास्त्र का कोई नया-पुराना ढंग उठा न रखा था। गालियों से लेकर डबलगंजी तक—जेल का

हर एक हथियार वह काम में लाता। मगर उस अमानुषिक-अत्याचार के फल स्वरूप कितने ही कैदी मर जाते।

जहां तक उमर के अपने व्यक्तित्व का सम्बन्ध था—उसके लिये ये घटनायें बहुत साधारण थीं। कैदी था—मर गया; इसमें नई बात क्या हुई? मगर संसार में वह अकेला ही तो सब कुछ न था। जनता—नामक एक अन्य पदार्थ भी था, उसकी सम्मति भी थी और उसकी जिह्वा-कृपाण भी। इन सब पर तो उसका कुछ अधिकार न था।

मनुष्य कितना ही अधम और कठोर क्यों न हो—जनता की सम्मनि के सामने उसे झुकना ही पड़ता है। प्रतापी शासक भी, जनता की अवहेलना कर अपना सिंहासन अचल नहीं रख सकता—फिर बेचारा उमर तो एक तुच्छ जेलर मात्र था। उसमें जनता की अवहेलना करने की शक्ति ही कहां थी?

थोड़े ही दिन में, उसकी जेल का नाम दूर-दूर तक निकल गया। दैनिक समाचार पत्रों में आये दिन जेल सम्बन्धी भयानक समाचार प्रकाशित होने लगे और रंगमंच के केसरी, वक्ता—अपने भाषणों में उनका रोमांचकारी वर्णन करने लगे। परिणाम यह हुआ कि जेल के साथ-साथ मोहम्मद उमर का नाम भी बदनाम होने लगा।

अब, वह जब कभी बाज़ार में निकलता, लोग उसकी तरफ अंगुलियां उठाते, यार दोस्त आवाजें कसते और स्वयं उसकी

सरल हृदया पत्नी और पुत्र रमजान भी उसके अत्याचारों से घृणा करते।

वह यदि अपने कठोर स्वभाव को कोमल बना लेता—बदल लेता—तो सारी समस्या ही हल हो जाती। मगर यह उससे न हो सका और वह अब किसी ऐसे उपाय की खोज में रहने लगा, जिससे अत्याचार जारी रखते हुए भी वह लोकापवाद से बच जाय। दूसरे शब्दों में—सांप भी मरे और लाठी भी न टूटे।

अत्याचारों के समाचार तो छिपाये जा सकते थे, मगर जो कैदी मर जाते उनकी खबरें गुप्त रख सकना विशेष कठिन हो रहा था। किसी न किसी तरह ऐसी खबरें प्रकाशित हो ही जातीं और बचते बचते भी ज़ेल के कलंक में एक और नया कलंक लग जाता। इन मरने वाले कैदियों से, पिण्ड कैसे छुड़ाया जाय—अब यही उसकी चिन्ता का प्रधान विषय था। कैदी मरते हैं तो भले ही मरें मगर जेल के सिर उनकी हत्या न लगे—वह इतना ही चाहता था।

इसके लिये उसके मस्तिष्क में कितने ही उपाय, कितनी ही योजनायें पैदा हुईं; मगर उसे किसी से संतोष न हुआ। तब अन्त में, वह आज फ़क़ीर के पास गया था और उपर्युक्त गालियें खाकर वापस लौटा था। दुनियां वाले उन्हें गालियें भले ही कहें, मगर उसके लिये तो वे तत्वपूर्ण संकेत थे, जिनका अभिप्राय निकालना उसके लिये कठिन हो रहा था।

उसी समय सामने से ओझा जी आते हुये दिखाई पड़े और दारोगा के मुख पर हंसी खेल गई।

"आइये, पण्डित जी। बड़े अच्छे मौके पर आये। मैं आज गया था, फ़क़ीर बाबा की खिदमत में और उन्होंने जो कुछ जवाब दिया है, वह यह है। आप भी देखिये, न"—कह कर जेलर ने एक कागज़ पर कुछ पंक्तियें लिखीं और ओझा जी की तरफ़ बढ़ा दीं।

ओझा जी कागज सामने रख कुछ समय तक सोचते रहे। उनका मुख कभी गम्भीर और कभी चिन्ता मग्न हो जाता। अंत में, जैसे गोताखोर को मोती मिल गये हों—प्रसन्न होकर बोले—"बड़ी पते की बात कही है, बाबा ने······खूब"

"कुछ बताइये तो सही।"—उत्सुकता पूर्वक जेलर ने पूछा।

ओझा जी गम्भीर हो गये और समझाते हुए बोले—"देखिये—रिश्वत खोर का प्रथम वर्ग -र- है और डाकू का -ड-। र- से मतलब है रेल और -ड- से डब्बा। फिर बाबा ने कहा था —लौट जा, लौट जा"। अर्थात्, मतलब यह निकला कि ऐसे कैदी को रेल के डब्बे में बिठाकर लौटा दो। समझे न आप?"

"ओह, कितनी सीधी बात मुझे अब तक समझ न आ रही थी" कहते हुए जेलर ने ओझा जी के हाथ पर एक

रुपया रख दिया और तत्काल वस्त्र धारण कर जेल की राह ली। पण्डित जी को उसकी इस बेचैनी पर आश्चर्य हो रहा था।

× × ×

जङ्गल-नदी-पर्वतों को लांघती हुई, छक छक-भक भक् करती हुई ट्रेन, तेजी से दौड़ी जा रही थी। उसके तीसरे दर्जे के एक डब्बे में खांडेराव अचेत पड़ा था। पांच स्टेशन पार कर जब ट्रेन आगे बढ़ने लगी, अकस्मात् उसकी निद्रा भङ्ग हुई और उसने देखा—अनेक उत्सुक नेत्र उसे भय, करुणा और आश्चर्य से देख रहे हैं।

अभी दो ही घण्टा पूर्व वह औरङ्गाबाद जेल के चिकित्सालय में मृत्यु-शय्या पर पड़ा अपनी अन्तिम घड़ी की प्रतीक्षा कर रहा था, और अब अकस्मात् इस डब्बे में कैसे आ पहुंचा? कौन उसे यहां पटक गया? वह कैसे बेहोश हुआ? अरे, उसका माथा क्यों चकरा रहा है?—उसे कुछ भी स्मरण न आ रहा था।

अकस्मात् उसका सिर चकराया और कटे हुए वृक्ष की तरह वह बेंच पर गिर पड़ा। देखते ही देखते उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

एंजिन चीख उठा। उसका चीत्कार, दिवंगत आत्माओं को—एक और महान आत्मा के पहुंचने की सूचना दे रहा था।